





# ब्रह्मचय-साधन

संपादक  
श्रीदुलारेलाल भार्गव  
(संस्कृत-संपादक) ए.

# ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य-संबंधी

## वेजोड पुस्तकें

ब्रह्मचर्य-विज्ञान	॥१॥	ज्ञा	॥२॥, १२॥
ब्रह्मचर्य की महिमा	१॥	तात्कालिक चिकित्सा	१॥, १॥॥
ब्रह्मचर्य ही जीवन है	॥१॥	प्रसूति-तंत्र	२॥॥, ३॥
ब्रह्मचर्य	१॥	संचित शरीर-विज्ञान	॥२॥, ॥॥॥
ब्रह्मचर्य	१॥॥	संचित स्वास्थ्य-रक्षा	॥२॥, ॥॥॥
हम सौ वर्ष कैसे जिंएँ	१॥	सरल व्यायाम	१२॥
स्वप्न-दोष	१॥॥	शीघ्रपतन	१२॥॥
स्वास्थ्य	३॥	धीर्य	॥२॥
स्वास्थ्य-दीर्घजीवन	॥२॥	मैं नीरोग हूँ या रोगी	१॥
स्वास्थ्य-रक्षक	२॥॥	स्वास्थ्य की कुंजी	१॥॥, १॥॥॥
स्वास्थ्य-रक्षा	३॥॥, ३॥॥॥	प्राणायाम	॥॥२॥, १॥२॥
स्वास्थ्य-विज्ञान	२॥॥, ३॥	हठयोग	१॥२॥, १॥॥२॥
स्वास्थ्य-साधन	२॥॥	दीर्घायु	२॥॥
धात्री-शिक्षा	२॥, २॥॥	जल-चिकित्सा	३॥॥॥
गुप्त संदेश	१॥	आरोग्य-साधन	१२॥
स्वास्थ्य और योगासन	१॥	आरोग्य-प्रदीप	१॥२॥
स्वास्थ्य के १० नियम	॥२॥	आसन	२॥
स्वस्थ शरीर	५॥	स्वास्थ्य और व्यायाम	१॥॥

हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलाने का पता—

गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १२७वाँ पुष्प

# ब्रह्मचर्य-साधन

लेखक

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

हृदय की परख, हृदय की प्यास, उत्सर्ग, गोल-  
सभा, अक्षत और आरोग्य-शास्त्र  
आदि के रचयिता

"The seed is the life. Give not thy  
strength to women " ( A Mother )

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथम संस्करण

सजिन्द ११ ] सं० १९८६ वि० [ सादी ॥

प्रकाशक  
श्रीदुलारेलाल भार्गव  
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय  
लखनऊ



मुद्रक  
श्रीदुलारेलाल भार्गव  
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस  
लखनऊ

## मूल-मंत्र

कुरुक्षेत्र के मैदान में जिस देश ने योरप, अमेरिका और एशिया तथा उत्तर ध्रुव तक की जातियों को अपनी आज्ञा के अधीन ला खड़ा किया था, उस देश के ३० करोड़ मनुष्य २ लाख आदमियों के गुलाम बने रहना क्यों 'अमन' समझते हैं ?

जहाँ भगवती गार्गी आजन्म कुमारी और सर्वथा बिन पदों किए सहस्रों विद्वानों की सभाओं में ब्रह्मवाद पर विजयी शास्त्रार्थ करती थीं, वहाँ आज करोड़ों ललनाएँ घर में पशु और बाहर पार्सल की भाँति क्यों रक्खी जाती हैं ? जहाँ माता का पद गुरु से भी प्रथम आचार्य-श्रेणी में माना जाता था, वहाँ आज ग्यारह-ग्यारह वर्ष की बालिकाएँ क्यों माता बनी दिखाई पड़ती हैं ? जिस देश के युवक सिद्धों की छातियों को फाड़ते थे, आज उनके स्वर, स्वरूप, वेश और स्वभाव में क्यों ज्ञानानापन आ गया है ? जिस देश के धर्मशास्त्र में न्यभिचारी को हत्यारे से भी अधिक गंभीर दंड-विधान है, वहाँ के एक ही नगर में १४ हजार चेरयाएँ क्या खाकर पेट भरती हैं ?

इसका एक ही सच्चा और गंभीर उत्तर है। वह है—

## ब्रह्मचर्य का नाश

और यदि कभी भारत स्वाधीन होगा, भारत की ललनाएँ कभी धर्मागिणी बन सकेंगी, भारत के बच्चे यदि कभी सुपुत्र कहला सकेंगे, तो एक ही कारण से। और वह है—'ब्रह्मचर्य-साधन।' सिद्ध पुरुषों ने कहा है—

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाप्नन्त ।”

लेखक

# विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
१—ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ? ... ..	१
२—ब्रह्मचर्य का महत्त्व ... ..	१४
३—आदर्श ब्रह्मचारी .. ..	२६
४—ब्रह्मचर्य-साधन की कठिनाइयाँ और विघ्न ...	३५
५—ब्रह्मचर्य-साधना के पूर्व की तैयारियाँ ...	४७
६—ब्रह्मचर्य-साधन के साधारण नियम ..	५८
७—ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल ... ..	६७
८—बच्चों को प्रारंभ ही से ब्रह्मचर्य-व्रती बनाने की विधि	७२
९—यौवन-काल में ब्रह्मचर्य ... ..	७७
१०—गृहस्थ-जीवन में ब्रह्मचर्य . ... ..	८६
११—अधेद अवस्था में ब्रह्मचर्य-सेवन	९२
१२—वृद्धावस्था का ब्रह्मचर्य ... ..	९६
१३—विशिष्ट ब्रह्मचर्य ... ..	१०३
१४—ऊर्ध्वरेत-प्रक्रिया ... ..	१०६
१५—अनिच्छा-पूर्वक ब्रह्मचर्य भंग करनेवाले रोग और उनके उपचार .. ...	११५
१६—ब्रह्मचर्य-संबंधी व्यायाम .. ...	११८
१७—ब्रह्मचर्य-संबंधी सदुपदेश .. ...	१२०
१८—सूक्ति-संचय ... ..	१२२

**ब्रह्मचर्य-साधन**





# पहला अध्याय

## ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?

‘ब्रह्मचर्य’ अत्यंत प्राचीन भारतीय संस्कृति का शब्द है, और यदि हम यह कहे कि संसार की किसी भी भाषा में इस शब्द का पर्यायवाची शब्द नहीं है, तो अत्युक्ति नहीं ।

‘ब्रह्मचर्य’ उस अति प्राचीन काल के जीवन का एक व्यावहारिक शब्द है, जब ‘ब्रह्मचर्य’ भारतीयों की दिनचर्या में उतना ही महत्त्व रखता था, जितना आज ‘व्यवसाय’ रखता है । यह संस्कृत-भाषा का शब्द है, और इसकी व्युत्पत्ति है—“ब्रह्मणि चरणमिति ब्रह्मचर्यम्” अर्थात् ब्रह्म में आचरण करना ब्रह्मचर्य कहाता है । प्राचीन संस्कृत-साहित्य में ब्रह्म शब्द के तीन अर्थ होते हैं ❁—वेद, वीर्य और परमात्मा । चरण शब्द के अर्थ है —“आचरण, चितन और रक्षण ।”

---

❁ “तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवायृतमश्नुते ।” ( कठोपनिषद् )

“तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तां आपः सप्रजापतिः ।” ( यजुर्वेद )

“प्रज्ञानं वै ब्रह्म ।” ( ऐतरेय उपनिषद् )

“यत्परब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।” ( कैवल्योपनिषद् )

“अगता ब्रह्मजिज्ञासा ।” ( वेदात )

“ब्रह्मनामेन चाजस्रमनन्तसुखमश्नुते ।” ( मनु )

इसलिये आज ब्रह्मचर्य से साधारणतया जो यह अर्थ लगाया जाता है कि ब्रह्मचर्य वीर्य-रक्षा को ही कहते हैं, वह भूल है। वास्तव में जब तक उपर्युक्त तीनों अर्थों के समष्टि रूप आचरण न होगा, तब तक 'ब्रह्मचर्य' की कदापि सिद्धि नहीं हो सकती।

क्योंकि वीर्य, जो आजकल 'ब्रह्मचर्य' का खास लक्ष्य है, शरीर-धातु है, परंतु इसका संबंध 'काम-वासना' से है। यह काम-वासना मन से उत्पन्न हुई है, और कामदेव को 'मनोज' कहते भी हैं। अतः इस 'वीर्य-पात' का संबंध खासकर मानसिक वृत्तियों से है। यों तो प्रत्येक इच्छा मन से ही उत्पन्न होती है, परंतु उन सबमें और कामेच्छा में बड़ा अंतर है। दूसरी इच्छाएँ बिना प्रथम सूक्ष्म अनुभव के नहीं उत्पन्न होतीं, परंतु कामेच्छा अपने नियत काल पर स्वयं ही हो जाती है। जब शरीर के अंग परिपूर्ण हो जाते हैं, तब यह इच्छा भी उत्पन्न हो जाती है, और वह सभी इच्छाओं से बलवती और अद्भुत होती है। ससार के इतिहास में कामेच्छा की शक्ति के बड़े-बड़े महत्त्व-पूर्ण उदाहरण हैं।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाश्चर्यं सर्वाणि च यद्वदन्ति ;

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तस्ते पदं सगृहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।

( कठोपनिषद् )

रातमेके वदन्यग्निं मनुमन्ये प्रजापातिम् ;

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ।

( मनु )

साम्राज्यों के विध्वंस यदि किसी इन्द्रिय-इच्छा ने किए हैं, तो इसी ने। इसीलिये काम यद्यपि ऐंद्रिक विषय है, पर इसे मानसिक विषयों में गिनकर काम, क्रोध, लोभ और मोह इन चार शत्रुओं में गिना है, वह भी सर्वप्रथम। क्रोध किसी खास इन्द्रिय का विषय नहीं, लोभ और मोह भी नहीं, परंतु काम एक इन्द्रिय का विषय है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में काम-वासना ऐंद्रिक विषय होने पर भी उसका मन से अति घनिष्ठ संबंध है, इसलिये जब तक मानसिक प्रवृत्तियों पर पूरा क्रावू न पा लिया जाय, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन, जहाँ तक उसका अर्थ वीर्य-रक्षा है, करना असंभव है। इसीलिये प्राचीन विद्वानों ने ब्रह्म शब्द को तीन भागों में विभक्त किया। एक वीर्य, दूसरा वेद अर्थात् ज्ञान, तीसरा परमात्मा, निर्गुण चैतन्य सत्ता। इन तीनों शक्तियों को समान भाव से साधना और चिंतना करने ही से वीर्य-रक्षा एवं ब्रह्मचर्य-साधना हो सकती है, अन्यथा नहीं।

इन तीनों विषयों को हम जरा और भी विस्तार से वर्णन किया चाहते हैं—

१—वीर्य-रक्षण ।

२—वेद-चिंतन ।

३—परमात्मा-आचरण ।

वीर्य-रक्षण के अर्थों में ब्रह्मचर्य की व्याख्या होनी चाहिए—

‘संयम’ अर्थात् संयम से रहने पर ही वास्तव में वीर्य-रक्षा हो सकती है ।

संयम की यहाँ हम थोड़ी व्याख्या करेंगे । मनु कहते हैं—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ,

संयमे यत्नमातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।

अर्थात् जैसे होशियार कोचवान मजबूती से लगाम पकड़कर घोड़ों को बश में रखता है, वैसे ही मन और आत्मा को इंद्रियों के विषयों में विचरण करने से यत्न से संयम में रक्खे ।

आगे मनु कहते हैं—

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ;

स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ।

अर्थात् जो मनुष्य वाणी और मन से शुद्ध और सुरक्षित रहता है, वही सब ज्ञानों के फलों को प्राप्त होना है ।

अब विचार करने का विषय यह है कि यह संयम किस प्रकार सिद्ध किया जाय । प्राचीन विद्वानों का मत है कि यम और नियम का पालन करने ही से संयम की सिद्धि होती है । यम पाँच प्रकार के हैं—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

( योग-साधन-पाठ )

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह । ये पाँच यम कहते हैं । तथा

१ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय और ५ ईश्वर-प्रणिधान । ये पाँच नियम कहाते हैं ।

इन दसों को संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—

अहिंसा—मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को कभी न सताना ।

सत्य—जिस बात को जैसा जाना है, वैसा ही मानना और कहना ।

अस्तेय—पराई वस्तु, स्त्री आदि पर स्वार्थ पूर्ण और अन्याय-दृष्टि न डालना ।

ब्रह्मचर्य—स्त्री का स्मरण, उनकी चर्चा, उनके साथ हँसी-मजाक करना, उन्हें धृष्ट, अक्रान्त में बातचीत करना, उन्हें वश में करने का संकल्प करना, संकल्प के अनुसार चेष्टा करना और संभोग करना, इन ८ प्रकार के मैथुनों में अपने का बचाना ।

अपरिग्रह—पराई कृपा के आमरे न छाना, दूसरे का दान न लेना, ये ५ यम हुए, और

शौच—शरीर को शुद्ध जल और चर्मों से, मन को शुद्ध विचारों से और आत्मा को आत्म-चित्तन से शुद्ध रखना ।

संतोष—हेतु में ईर्ष्या रखना, फल में नहीं ।

तप—कष्ट सहने पर भी धर्म और नीति का त्याग न करना ।

स्वाध्याय—सदा सच्छास्त्रों को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते रहना ।

ईश्वर-प्रणिधान—ईश्वर में अटल भक्ति और उसका चिन्तन ।  
ये ही यम और नियम हैं । मनु कहते हैं—

यमान् सेवते सततं न नियमान् केवलान् बुधः ;

यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह केवल नियमों का सेवन न करे, यम और नियम दोनों का सेवन करे । जो कोई भी यम के पालन को छोड़कर केवल नियम का सेवन करेगा, वह मनुष्य पतित होगा ।

इसलिये यम और नियम पालन करने ही से संयम का यथार्थ अभ्यास हा सकता है, और संयम ही से वास्तव में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-रक्षण होना संभव है, और रीति से नहीं ।

वीर्य-रक्षण के बाद ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है वेदाध्ययन । वेद से अभिप्राय ज्ञान-प्राप्ति अथवा अध्ययन से है । प्राचीन काल में वेदों ही का जहत्व सर्वोपरि था, और उसका पठन-पाठन भारतवर्ष के निवासी यत्न से किया करते थे । उसके साथ अन्य धर्म और विज्ञान का साहित्य भी लोग पढ़ा करते थे । क्योंकि स्वाध्याय अर्थात् अध्ययन करने से इंद्रियाँ स्थिर होती हैं, मन अपने विषयो पर अनासक्त होता है, और स्वभाव में गंभीरता एवं विचारों में प्रौढ़ता उत्पन्न होती है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च ।  
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।  
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।  
अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।  
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजतश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।  
प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।

अर्थात् यथाथे आचरण से स्वाध्याय करे ( जो कुछ पढ़े-पढ़ावे, समझे वैसा ही अपना आचरण बनावे ) । सत्याचार से स्वाध्याय करे ( केवल निर्दोष विद्याओं को ही पढ़े-पढ़ावे ) । तप से स्वाध्याय करे ( तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए धर्म-ग्रंथों को पढ़े-पढ़ावे ) । दम से स्वाध्याय करे ( बाह्य इंद्रियों को घुरे आचरणों से रोककर पढ़े-पढ़ावे ) । शम से स्वाध्याय करे ( मन की वृत्तियों को सब प्रकार के दोषों से हटाकर पढ़े-पढ़ावे ) । अग्नि से स्वाध्याय करे । अग्निहोत्र से स्वाध्याय किया करे ( अग्निहोत्र—नित्यकर्म करता हुआ स्वाध्याय करे ) । अतिथि से स्वाध्याय करे ( अतिथि का स्वागत-सत्कार करते हुए पढ़े-पढ़ावे ) । मनुष्य से स्वाध्याय करे ( मनुष्यों से सद्व्यवहार करते हुए पढ़े-पढ़ावे ) । प्रजा से स्वाध्याय करे ( संतान और राज्य एवं अधीनों से यथायाग्य व्यवहार करता हुआ स्वाध्याय करे ) । प्रजनन करता हुआ स्वाध्याय करे ( वीर्य-रक्षा और वीर्य-वृद्धि करता हुआ पढ़े ) । प्रजाति करते



हुए स्वाध्याय करे ( सतान और शिष्यों को योग्य बनाते हुए पढ़े ) ।

हम यह कह सकते हैं कि अध्ययन करने के उपर्युक्त नियमों का मुकाबला करनेवाले नियम हमें संसार-भर की सभ्यता में नहीं मिल सकते । इन नियमों के निर्माण करनेवालों ने यह निश्चय कर लिया था कि अध्ययन से ज्ञान-वृद्धि होती है, और ज्ञान का यथार्थ लाभ उसकी प्राप्ति नहीं, प्रत्युत उस पर अमल करना है, और ज्ञान पर व्यावहारिक जीवन बनाने का ही वह उपर्युक्त विधान बताया गया है ।

अब रही तीसरी बात—परमात्म-चित्तन ।

जब यम-नियमों का साधन हो गया, और संयम का अभ्यास हो गया, स्वाध्याय और सद्ग्रंथों का निरंतर मनन होने से बुद्धि और मन निर्मल है, तब चित्तन का विषय क्या हो सकता है ? क्या ऐसा पुरुष काम-वासना को चिता करेगा ? क्या वह कांचन-कांचनी का चित्तन करेगा ? क्या जगत् की कोई भी संपदा उसे प्रलोभन में डाल सकेगी ? यह संभव ही नहीं है । उसको चित्तना का विषय होगा परमात्म-चित्तन, जो वास्तव में विशुद्ध और चरम सीमा के चित्तन का विषय होना चाहिए ।

अथर्ववेद में लिखा है—

ब्रह्मभ्यावर्तेत्तन्मे यच्छतु द्रविण तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ।

अर्थात् मैंने ब्रह्म की उपासना की । उसने मुझे सामर्थ्य दी, और ब्रह्मवर्चस् दिया । यह ब्रह्मवर्चस् वही महत्त्व-पूर्ण वस्तु है.

जिसकी जिज्ञासा बड़े बड़े ऋषियों ने की है। अथर्ववेद इसकी व्याख्या में लिखता है—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावर्ते ;

सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ।

अर्थात् हम सूर्य के समान शरीर को प्रकाशित करनेवाले ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करते हैं, वह हमें मनोगत दे, वह हमें ब्रह्मतेज प्रदान करे ।

वास्तव में ब्रह्मवर्चस् 'आत्मज्ञान' का नाम है। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

तद्य एवेतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते ;

तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषा ऽऽ सर्वलोकस्य कामचारो भवति ।

अर्थात् इस प्रकार ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वह ब्रह्मचारी सभी लोकों में यथेच्छ भ्रमण कर सकता है।

यह ब्रह्मलोक वास्तव में मन की वह अवस्था है, जब आत्मज्ञान होने पर मन ब्रह्म में लीन हो जाता है। फिर उसे किसी बात की चाहना नहीं रहती।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य मनुष्य को संसार में सबसे उच्च बना देता है। मनु कहते हैं—

स्वाध्यायेन ब्रतैर्होमैस्त्रैविद्ये नेजाया सुतैः ;

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनुः ।

स्वाध्याय से, ब्रह्मचर्य से, सत्यभाषण से, वेदोक्त तीन विद्या—कर्म, उपासना और ज्ञान—से, उत्तम संतानोत्पत्ति से,

यज्ञ से यह शरीर ब्राह्मीय ब्रह्म-युक्त अर्थात् वीर्य, ज्ञान और आत्मा से युक्त किया जा सकता है।

पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस विधि की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं, जो प्रत्येक आर्य-परिवार अपनी संतान को योग्य आयु होने पर उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देने के समय किया करता था।

ब्राह्मण-पुत्र ऽवें वर्ष, क्षत्रिय-पुत्र ११वें वर्ष और वैश्य-पुत्र १२वें वर्ष में 'ब्रह्मचर्य'-व्रत ग्रहण करते थे। खास-खास अवस्थाओं में यह समय क्रमशः १६, २२, २४ वर्ष हो जाता था ❀।

मनु का वचन है—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे ;

राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ।

यदि कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र ब्रह्मवर्चस्वी हो, तो उसे वर्ण-क्रम से ५-६ और ऽवें वर्ष में ही वच्चे को ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देनी उचित है।

ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देने की परिपाटी यह थी—

\* अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् १, गर्भाष्टमे वा २, एकादशे क्षत्रियम् ३, द्वादशे वैश्यम् ४, आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानन्तातः कालः ५, अष्टाविंशात्क्षत्रियस्य; आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतित-सावित्रिका भवति ६ ।

(आश्वलायन गृह्यसूत्र)

प्रथम बालक को तीन दिन तक व्रत या उपवास कराया जाता था । इस व्रत में ब्राह्मण-पुत्र को दूध, क्षत्रिय-पुत्र को दलिया और वैश्य-पुत्र को सिखरना दिया जाता था ॥

इसके बाद पिता यज्ञ करके संतान को आचार्य के सुपुत्र करता था । आचार्य उसे यज्ञोपवीत प्रदान करता और उसे गुरु-मंत्र देता था, तथा उससे ये प्रतिज्ञाएँ कराता था—

- १—“ब्रह्मचार्यसि”—तू ब्रह्मचारी है ।
- २—“अपोऽशान”—शुद्ध जल पिया कर ।
- ३—“कर्म कुरु”—काम किया कर, ( खेल-कूद त्याग )
- ४—“दिवा मा स्वाप्सी”—दिन में मत सोया कर ।
- ५—“आचार्याधीनो वेदमधीष्णु”—आचार्य से वेद पढ़ा कर ।
- ६—“द्वादशवर्षाणि प्रति वेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ।”—प्रत्येक वेद के लिये १२ वर्ष ब्रह्मचर्य-व्रत पालन कर ।
- ७—“क्रोधानृते वर्जय”—क्रोध और झूठ त्याग दे ।
- ८—“मैथुनं वर्जय”—मैथुन त्याग दे ।
- ९—“उपरिश्य्यां वर्जय”—पलंग पर मत सोना ।
- १०—“कौशीलगंवाञ्जनानि वर्जय”—गाना, बजाना, नाचना तथा सुगंध और अंजन आदि न लगाना ।
- ११—“अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रा जागरणं निन्दां लोभ-

---

\* पयोव्वतो ब्रह्मणो यवागू व्रतो राजन्य आभिज्ञव्रतो वैश्यः ।

( शतपथ-ब्राह्मण )

मोहभयशोकान् वर्जय ।” — अत्यंत स्नान, भोजन, निद्रा-जागरण, निदा, लोभ, मोह, भय, शोक त्याग दे ।

१२—“प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनं स्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना योगाभ्यासान्नित्यमाचर ।” — प्रतिदिन रात्रि के अंतिम प्रहर में उठ, और नित्य-कर्म करके दंतधावन, स्नान, संध्या, उपासना और योगाभ्यास नित्य किया कर ।

१३—“लुरवृत्त्यं वर्जय” — हजामत मत बनवा ।

१४—“मांसरूक्षहारं मद्यादिपानं वर्जय” — मांस, रूक्ष भोजन, शराब आदि से दूर रह ।

१५—“गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय” — सब प्रकार की लवारी त्याग दे ।

१६—“अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय” — गांव में रहना और जूता-छाता धारण करना त्याग दे ।

१७—“अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीयस्खलन विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ।” — हाथ से गुप्तेन्द्रिय न छू । न वीर्य-स्खलन कर । वीर्य को शरीर में रक्षित कर और ऊर्ध्वरेता बन ।

१८—“तैलाभ्यंगमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ।” — तेल आदि को मालिश, अधिक खटाई, क्षार, रेचन आदि त्याग दे ।

१९—“नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्न-

वान् भव ।”—सदा युक्ताहार-वितार कर, विद्योपार्जन से यत्न कर ।

२०—“सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव”—सुशील, मितभाषी और सभ्य बन ।

२१—“मेखलादंडधारण वैद्यचर्यस्मिन्नवानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्राप्त-सायसभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियस्वादीन्येते ते नित्य धर्माः ।”—मेखला-दंड-धारण, भिन्नाचरण, अग्नि-होत्र, न्नात, संध्या, आचार्य का प्रिय आचरण, आचार्य को प्रणाम, ये तेरे नित्य कर्म हैं ।

इस उपदेश के बाद वह बालक ( चाहे राजा का हो, चाहे रंक का ) गुरु-गृह में जाकर २४, ३२, ४८ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का कठिन व्रत पालन करके वीर्य, विद्या और आत्मज्ञान की प्राप्ति किया करता था, और तब उसे गृहस्थ होने का विधान था । वहाँ भी वह ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करता था ।

## दूसरा अध्याय

### ब्रह्मचर्य का महत्त्व

अथर्ववेद में लिखा है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत ;

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता।  
इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के बल से ही देवताओं पर प्रभुत्व कायम किया।

मृत्यु का जीत लेना संसार की एक बड़ी वस्तु है। और हम कह सकते हैं कि मृत्यु को जीत लेना ब्रह्मचर्य को छोड़कर और किसी भौति संभव ही नहीं है।

आज हम लक्षावधि प्राणियों को अकाल में मृत्यु-मुख में जाते देखते हैं। हम सोचते हैं, इस सुंदर हरी-भरी दुनिया को इस प्रकार त्याग देना कैसा दुर्भाग्य है। क्या जीवन इतना अपदार्थ है कि उसे यो ही छोड़ दिया जाय। मनुष्य अपने जीवन के लिये क्या-क्या संग्रह करता है, क्या-क्या सुख और उपभोग वह प्राप्त करता है। वह स्त्री से, पुत्र से, मित्रों से कुटुंबी जनों से विविध संबंध स्थापित करता है, सो क्या इसीलिये कि वह चाहे जब मर जाय ?

जिन संपदाओं को वह अपने हाथ का मैल समझता है, और

चाहे जब उन्हें उपार्जन कर सकता है, वे संपदाएँ तो सहस्रों वर्ष तक चिरस्थायी रहती हैं, परंतु वह पुरुष, जो इन सबका स्वामी है, अपने क्षण-भंगुर जीवन को लिए फिरता है।

हम इस बात का प्रबल प्रमाण रखते हैं कि प्राचीन काल में भारत में अति दीर्घजीवी पुरुष रहते थे, और उनकी सैकड़ों वर्ष की आयु होती थी। आज यदि हम अपने से एक पीढ़ी पीछे देखें, तो हम सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि किस प्रकार नई पीढ़ी का जीवन हास होता चला जा रहा है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि आयु की अवधि कम होने का मूल-कारण ब्रह्मचर्य का नाश ही है। यह बात सब कोई जानता है कि संसार में रहकर मनुष्य को वेदमंदाज शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल खर्च करना पड़ता है। इस बल का संचय ब्रह्मचर्य के द्वारा ही किया जा सकता है। यदि ब्रह्मचर्य द्वारा यह बल हम संचय न करेंगे, तो खर्च कहाँ से करेंगे ? हम आज रोगी, दरिद्र, जर्जर, संतान-रहित और अल्पायु क्यों हैं ? ब्रह्मचर्य का पालन न करने से, कच्ची आयु में वीर्य-नाश करने से। दरिद्रता का मूल-कारण यही है कि जिस उम्र में ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति-संचय करना उचित था, उस उम्र में बाल-विवाह कर, गृहस्थ बन शक्ति-क्षय करना प्रारंभ कर दिया। आज प्रत्येक पुरुष का शरीर, मन और आत्मा उसके जीवन के बोझ से दबा हुआ है, इसका कारण शक्ति का अभाव है।



ब्रह्मचारी बनकर विद्या पढ़ने से आत्मिक बल बढ़ता है। आत्मा बलिष्ठ होती है, और मनोवृत्ति गंदी नहीं होने पाती। विशुद्ध मनोवृत्ति होने से शारीरिक बल, जो कुचेष्टाओं से खंडित होता है, रक्षित रहता है। हम सबका समुदाय ही समाज है। जब हम सबका शरीर और आत्मा बली होता है, तो समाज भी बली होता है। प्राचीन वीर ब्रह्मचर्य का बल जगत् को दिखा गए हैं।

यदि सचमुच देखा जाय, तो हमारी आयु, आरोग्यता, सौंदर्य, ऐश्वर्य और सारी भावी कामनाओं का यही मूल है। एकमात्र इसी के अनुष्ठान से हमारी सारी धार्मिक और नैतिक मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं। ब्रह्मचारी ही आदर्श संतान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है। उत्तम संतान पैदा करनेवालों को ब्रह्मचारी होना परमावश्यक है। ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करने पर ही हमें विद्या-प्राप्ति का सुबीता रहता है। यह विद्या वास्तव में प्राचीन विद्वानों के तजुर्बे हैं। उन्हें देखकर ही हम यह जान सकते हैं कि इस अगम्य संसार की गति कैसी है, और किस काम को किस प्रकार करने से क्या हानि-लाभ होगा। ईश्वर ने माता, पिता, पुत्र व पड़ोसी और देश का व्यवहार, अपना धर्म-कृत्य और जीवन-धर्म, इन सबको जानने ही के लिये ब्रह्मचर्य की सृष्टि की है। हमारे सामने जीवन का, सुख-दुःख का, हानि-लाभ का, साहस-वीरता का, परोपकार का जो बृहत् भवन खड़ा हो सकता है, ब्रह्मचर्य ही उसकी नींव

है। यह जो हमारे सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चतुर्वर्ग-प्राप्ति का महान् वृक्ष है, ब्रह्मचर्य ही उसका मूल है। अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन टढ़ बने, हमारा उद्देश्य-वृक्ष बड़े-बड़े आँधी के मोकों से भी न उखड़े, तो हमें चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके कृतकृत्य हो जायँ।

मनुष्य संसार का विशिष्ट प्राणी है। उसकी उन्नति की सीमा नहीं। वह चाहे, तो जगत् को हिला सकता है, पर इसके लिये गहन मेधा, बुद्धि और प्रबल बाहु-बल का सहारा चाहिए। प्राचीन महापुरुष भीष्म, भीम, कृष्ण, राम आदि महानुभाव, शुक, व्यास, कपिल आदि महापुरुष इसी के बल पर अपना जीवन अमर बना गए हैं।

छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

एकत्तश्चतुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकतः।

अर्थात् चारो वेद एक ओर हैं, और अकेला ब्रह्मचर्य एक ओर। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है—

तेषामेवैष स्वर्गलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।

स्वर्गलोक उन्ही लोगों के लिये है, जो तपस्वी, ब्रह्मचारी और सत्यनिष्ठ हैं।

महाभारत के शांतिपर्व में भीष्मपितामह ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में कहते हैं—

ब्रह्मचर्यस्य सुगुणं शृणु त्वन्च सुधाधिया ;

आजन्म भरगाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।

न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ;  
 बहुकोटि ऋषीणाम् च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ।  
 सत्ये रत्नानां सततं दन्तानामूर्ध्वरेतसाम् ;  
 ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् ! सर्वपापान्युपासितम् ।

हे बुद्धिमानो, ब्रह्मचर्य के उत्तम गुणों को सुनो । जो कोई भी आजन्म ब्रह्मचारी रहेगा, उसे कभी दुःख न होगा ।

हे राजन्, उसे कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं । वह अनंत काल तक ब्रह्मलोक में ऋषिगणों के बीच रह सकता है ।

जो सत्य में रत हैं, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं, हे राजन्, ब्रह्मचर्य उनके समस्त पापों को नाश कर देता है ।

सुश्रुताचार्य कहते हैं—

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम् ;  
 ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ।  
 शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ;  
 यद्वञ्छति महद्दमं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ।

मृत्यु, व्याधि और जरा को नाश करनेवाला, अमृत के समान महौषध ब्रह्मचर्य है, यह मैंने सत्य कहा । शान्ति, कान्ति, स्मृति, ज्ञान और आरोग्य तथा संतान, इनकी जो पुरुष इच्छा करता है, वह ब्रह्मचर्य का पालन करे ।

गीता में भी लिखा है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ;  
 ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।

देव, गुरु, द्विज और विद्वान् की पूजा, पवित्रता और सरलता तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसा को शारीर तप कहते हैं।

तंत्र-शास्त्रों में लिखा है—

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।

अर्थात् तप को तप नहीं कहा, ब्रह्मचर्य ही तप है। उपनिषद् में एक स्थल पर लिखा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा

सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ;

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो

यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।

सत्य से, तप से, पूर्ण ज्ञान से और अविचल ब्रह्मचर्य से आत्मा का लाभ हो सकता है। वह अंतःकरण में ज्योतिर्मय और निर्मल रूप से विराजमान है। जो लोग सिद्ध और निष्पाप है, वे ही उसका दर्शन कर सकते हैं।

छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव । तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दन्तेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्टाऽऽत्मानमनुविन्दन्ते ।

जिसे यज्ञ कहते हैं, वह 'ब्रह्मचर्य' ही है। उस ब्रह्मचर्य का जाननेवाला ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिसे इष्ट कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य द्वारा यजन करके ही पुरुष ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि अथर्ववेद वास्तव में आयुर्वेद का बीज रखता है। आयुर्ज्ञान-संबंधी बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें अथर्ववेद में बयान की गई हैं। इस अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य पर एक पृथक् सूक्त दिया है, जिसे हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं—

ब्रह्मचारी चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः सम्मनसो भवन्ति । सदा-  
धार पृथ्वी दिवं च स आचार्यं तपसा पिपति ।

ब्रह्मचारी पृथ्वी और आकाश में विचरण करता है। उसमें देवों का वास होता है। वह पृथ्वी और आकाश को धारण करता है। वह आचार्य को तप से पूर्ण करता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः ;

पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।

गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः ;

पद्सहस्राः सर्वान्स देवांस्तपसा पिपति ।

ब्रह्मचारी का पितर, देव, देवेतर अनुसरण करते हैं। गंधर्व इसका अनुसरण करते हैं। वह अपने तप से ३३, ३००, और ६ हजार देवों को पूर्ण करता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ;

तं रात्रीस्तिस्म उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।

उपनयन देनेवाला आचार्य ब्रह्मचारी को प्राप्त करता है। उसे तीन रात्रि तक अपने उदर में रखता है, तब देवता उसे देखने आते हैं।

इयं समिष्टृथिवी द्योर्द्वितीये तान्तरिकं समिधा पृणाति ;

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया अमेण लोकांस्तपसा पिपति ।

यह पृथ्वी प्रथम समिधा है । दूसरी समिधा आकाश है । वह ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, अम और तप से लोक को पूर्ण करता है ।

पूर्वो जातो ब्राह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसान्तपत्तोदातिष्ठत् ;

तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ।

ब्रह्मचारी प्रथम ब्रह्म होता है । फिर-फिर तप करता है । उससे ब्राह्मण और ब्रह्मज्येष्ठ होता है । सब देव अमृत-सहित साथ रहते हैं ।

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्पण्यवसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ;

स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्नुत् ।

वह समिधा से युक्त, मृगचर्मधारी, दाढ़ी-मूछों से युक्त पूर्व से उत्तर समुद्र तक जाता है, वह बारंवार लोक में आचरण करता है ।

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामाजभार प्रथमो दिवं च ;

ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पितभुवनानि विश्वा ।

इस भूमि और आकाश की वह प्रथम भिक्षा करता है, फिर उनकी समिधा बनाता है । इन्हीं के बीच विश्व के भुवन हैं ।

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिगो बृहच्छेपोऽनुभूमौ जभार ;  
ब्रह्मचारी सिञ्चति सा नौरेतः पृथिव्यां ते न जीवन्ति प्रदिशन्च तस्मः ।

वह मेघ की भाँति गर्जता हुआ, रक्त नेत्रवाला, भूरा, बृहत्

आकारवाला भूमि को पोषण करता है । अपने वीर्य से पृथ्वी को सींचता है । उससे दिशाएँ जोवित होती हैं ।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरचति ;

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।

ब्रह्मचर्य के तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, और आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी को चाहता है—

इस सूक्त में और भी बहुत-से मंत्र हैं । अब हम इस सूक्त का भावार्थ लिख देना उचित समझते हैं—

ब्रह्मचारी ऐहलौकिक और पारलौकिक विद्याओं का अध्ययन करके उत्तम ज्ञान प्राप्त करता है, और विद्वान् बनकर आचार्य के परिश्रम को सफल करता है ।

ब्रह्मचर्य के बल पर वह विविध दैवी शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त करता है ।

आचार्य उसे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अंधकारों से बचाकर श्रेष्ठ ज्ञान देता और उसे परिपक्व-बुद्धि बनाता है ।

शिक्षा प्राप्तकर वह आचार्य से पृथक् होता है, और अपने ज्ञान और अध्यवसाय से जगत् को लाभ पहुँचाता है ।

वह अपने तप और इंद्रिय-दमन के कारण सर्वत्र प्रतिष्ठित होता है । वह ब्रह्मचारी अवस्था में कठोर नियमों का पालन करता है, और उसके दिव्य गुण सारे संसार में व्याप्त हो जाते हैं । वह भौतिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता और

उनका अनुष्ठान भी करता है। उसका स्वर गंभीर, शरीर पुष्ट और मेघ के समान सबको अमृतदाता होता है।

आचार्य से सदाचार और ज्ञान की शिक्षा प्राप्तकर वह शांत और शिष्ट हो जाता है। यदि वह आचार्य-पद प्राप्त करता है, तो प्रजापति के समान शोभा पाता है। राजा होता है, तो उत्तम रीति से राष्ट्र का पालन करता है। वह मृत्यु को विजय कर लेता है। पृथ्वी के सभी चराचर उसके वशीभूत हो जाते हैं। वह संसार की रक्षा करता और संसार को सत्य का प्रकाश प्रदान करता है।

पाठक देख सकते हैं कि उपर्युक्त सूक्त में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा कितनी सुंदरता से की गई है। वास्तव में ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में इससे अधिक उत्तम बात कोई दूसरी हो ही नहीं सकती।

प्राचीन काल के ग्रंथ और सभ्यताएँ ऐसे वाक्यों और गंभीर प्रवचनों से परिपूर्ण हैं, जिनमें ब्रह्मचर्य की महिमा पूर्ण रीति से बयान की गई है।

ब्रह्मचर्य से इतनी वस्तुओं की सिद्धि होती है—

१. विद्याध्ययन—विद्याध्ययन के लिये स्मृति, बुद्धि, मेधा, स्वास्थ्य, इन्द्रिय-वश्यता और तत्परता, इतनी वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। ये वस्तुएँ ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त हो सकती हैं। जो विद्यार्थी विद्याध्ययन करने के समय ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं करते, वे कदापि सफल विद्यार्थी नहीं होते।



२. सामर्थ्य-प्राप्ति—जिन्होंने भीष्मपितामह की सामर्थ्य देखी है, वे समझ सकते हैं कि ब्रह्मचर्य ही सामर्थ्य की एकमात्र सीढ़ी है। जितने योद्धा, पहलवान और वीर पुरुष देखने को मिलेंगे, वे जब तक ब्रह्मचारी रहे, तभी तक उनकी विजय रही।

३. धन-प्राप्ति—धन-प्राप्ति में स्थैर्य, सामर्थ्य और प्रतिभा की बड़ी आवश्यकता है। जो ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त हो सकती है।

४. दीर्घायु-प्राप्ति—ओज मनुष्य को जीवन-शक्ति देता है। यह ओज वास्तव में वीर्य-रक्षा से उत्पन्न होता है, क्योंकि वीर्य का सार ओज है। प्राचीन काल में जो महा-दीर्घायु पुरुष हो गए हैं, वे सभी ब्रह्मचारी थे। वीर्य नाश करने-वाला व्यक्ति कदापि दीर्घायु नहीं हो सकता।

५. स्वास्थ्य-रक्षा—चाहे भी जितनी सावधानी से रहिए, परंतु यदि ब्रह्मचर्य नहीं पाला गया है, तो स्वास्थ्य-रक्षा नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य ही सब दोषों को समान रखता है।

६. सुसंतान-प्राप्ति—जो ब्रह्मचारी नहीं हैं, वे या तो संतान-रहित होंगे या उनकी संतान रोगी, अल्पायु और दुराचारिणी रहेगी। प्राचीन ऋषि-मुनि मनोवांछित संतान उत्पन्न कर सकते थे। इसका कारण यह था कि वे केवल ऋतु-काल में संतान के लिये ही स्त्री-गमन करते थे। पशुओं में आज भी यही

नियम है। जिस नर को अच्छा वीर्यदाता बनाना होता है, उसे खास तौर पर सुरक्षित रक्खा जाता है।

७. रोग-निवृत्ति—ब्रह्मचर्य से अनेक रोगों की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्मचारी कठिन रोगों के आक्रमण को अनायास ही सहन कर लेते हैं। परंतु जो लोग वीर्य नष्ट कर चुके हैं, उनकी अकाल मृत्यु अनायास ही हो जाती है।

८. दिव्य ज्ञान—ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी महात्मा हो जाता है, और वह सभी सूक्ष्म विषयों पर ठीक-ठीक विवेचन कर सकता है।

इस प्रकार वास्तव में संसार में मनुष्य के लिये ब्रह्मचर्य अत्यंत महत्त्व-पूर्ण वस्तु है, और जिसने इस अमूल्य रत्न को नहीं प्राप्त किया, उसने कुछ भी प्राप्त नहीं किया।

---

# तीसरा अध्याय

## आदर्श ब्रह्मचारी

जब द्वापर का महायुद्ध हुआ, तब जरासंध, कालयवन, कंस, शिशुपाल आदि अधर्मियों के अत्याचार के दौरेदौरे का वाज्रार इतना गर्म हो गया था कि प्रजा में हाहाकार मच गया था, पर उनके उत्कृष्ट बल और प्रभाव को देखकर किसी को भी उनके आगे सिर उठाने की हिम्मत न हुई। पर श्रीकृष्ण ने बारह ही वर्ष की अवस्था से उनके आगे सिर उठाया, उनके गर्व को तोड़ा, और निरंतर परिश्रम करके यत्न, युक्ति और बल से उनका मूलोच्छेद करके धर्म-राज्य की नींव स्थापित की। इतना करते हुए भी किसी ने उन्हें घबराते या उदास नहीं देखा। वह सदा आनंद-कंद रहे। दुःख मानो उनके लिये निर्माण ही नहीं हुआ था।

ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से उनकी अंतर्दृष्टि बिल्कुल स्थिर थी। द्वारका में इधर शल्य के साथ उनका घोर युद्ध हो रहा था, उधर द्यूत-सभा में द्रौपदी के वस्त्राहरण में द्रौपदी की रक्षा करना वह नहीं भूले।

कुरुक्षेत्र में युद्ध की आग भड़क रही थी। खून के प्यासे योद्धा जान पर खेलकर समर-भूमि में दूटे थे। भीषण

दृश्य सम्मुख था, जिसके ध्यान ही से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बाप, बेटे, भाई, बावा सब अपने ही आत्मीयों के रक्त से हाथ रँगने को पागल हो रहे थे। सभी हतचेत और जन्मन्त थे। हिंसा और स्वार्थ की अग्नि सभी के हृदयों में प्रचंड वेग से धधक रही थी। यह सब देखकर अर्जुन ने हाथ से धनुष पटक दिया, दुःख में भरकर कहा—“महाराज, मेरे हाथ से धनुष खिसका पड़ता है, चमड़ी जली जाती है, मन में चढ़ेगा आ रहे हैं, मैं खड़ा भी नहीं रह सकता। अपने स्वजनों को मारकर अपना श्रेय नहीं चाहता। जिनके लिये हम राज्य-धन चाहते हैं, वही प्राणों का मोह छोड़कर मरने पर दृढ़ हैं। ये गुरु हैं, ये चाचा हैं, ये भतीजे हैं, ये भाई हैं, ये संबंधी हैं, ये सब हमें मारने को तुले हैं। यह जानकर भी हे मधुसूदन ! इनको मारकर हम त्रिलोकी का भी राज्य नहीं चाहते।”

अर्जुन की ऐसी मोह-बुद्धि देखकर भी कृष्ण विचलित न हुए। उनका मन तब भी शांत था, और इसी कारण ऐसी गड़बड़ी के समय में कृष्ण ने गीता-महोपदेश अत्यंत शांत भाव से अर्जुन को दिया। ऐसा धैर्य विना ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के नहीं आ सकता, न विना ब्रह्मचर्य के ऐसी अंतर्दृष्टि और स्थिरता ही आ सकती है।

सारे संसार में श्रीकृष्ण के व्यभिचार की कहानियाँ गाई जाती हैं। इतनी, जितनी शायद ही किसी महापुरुष की गाई गई

हो । परंतु श्रीकृष्ण मनुष्य-जीवन की गृहस्थी के आदर्श नमूने हैं । भागवत में जहाँ इस बात का वर्णन किया है कि उनकी वंशो की ध्वनि सुनकर सैकड़ों गोपियाँ विह्वल होकर उनके पीछे दौड़ती थीं, हमें इस बात की शिक्षा मिलती है कि भगवान् कृष्ण कितने उच्च श्रेणी के इंद्रिय-विजयी थे । क्या कोई ऐसा भी उदाहरण है, जहाँ कृष्ण स्त्रियों के पीछे पागल हुए फिरे हों । क्या यह सत्य नहीं कि लंपट पुरुष ही स्त्रियों के पीछे फिरा करते हैं, न कि स्त्रियाँ उनके पीछे ।

फिर क्या उस समय के पुरुष इतने निर्लज्ज और बेगैरत हो गए थे, जो अपनी वहन-बेटियों को ऐसे पुरुष के पास आने देते थे, जिसके साथ उनका अच्छा संबंध न था । इससे तो यही साफ प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण के ब्रह्मचर्य और इंद्रिय-वश्यता पर सभी को पूरा-पूरा विश्वास था, और लोग निर्भय अपनी स्त्रियों, बेटियों और बहनों को उनके पास आने देते थे ।

भीष्मपितामह संसार के श्रेष्ठ ब्रह्मचारी हैं । पिता की वासना चरितार्थ करने के कारण उन्होंने कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का आजन्म पालन किया । एक ऐसे राजपुत्र का, जो वास्तव में सब भोगों का अधिकारी था, जिसके विवाह की सभी तैयारी हो चुकी थी, पिता के कारण जीवन के सुख को त्याग देना साधारण नहीं । भीष्म-जैसे प्रबल योद्धा, जिनके सम्मुख एक बार कृष्ण को भी अपनी प्रतिज्ञा भूलकर चुन्ध होना पड़ा, ब्रह्मचर्य के ज्वलंत उदाहरण हैं ।

मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की हृदयता, धैर्य, शांति, त्याग और पवित्रता की बात विचारते हुए हृदय गद्गद हो जाता है। एक तरफ रावण-जैसा दुर्जय, प्रबल प्रतापी शत्रु, लंका-जैसा दृढ़ किला, समुद्र-सी खाई। बड़े-बड़े भयानक राक्षस जिसके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटिलता है। कम्भकर्ण-जैसा महारथी भाई, मेघनाद-जैसा अजेय पुत्र और दूसरी ओर अकेले राम, नंगे पैर, नंगे सिर, हाथ में वनुष और हृदय में अजेय आत्मबल। ऐसा मारा कि नामलेवा और पानी देने-वाला भी न बचा। यह उनके ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रभाव था। पत्नी के साथ रहते हुए भी १३ वर्ष तक भयानक वन में ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना वास्तव में असाधारण तप है।

जिस समय मदोन्मत्त होकर क्षत्रिय मर्यादा का उल्लंघन कर रहे थे, उन्हें अपने प्रबल प्रताप से नाथनेवाले परशुराम और हिरण्यकशिपु को केवल नाखूनों से चीरनेवाले नृसिंहदेव तथा समुद्र को उल्लंघन करके असाध्य साधन साधनेवाले हनुमान पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रताप ही से अपना अटल आतंक संसार-पट पर जमा गए हैं।

रावण के पुत्र मेघनाद का जिन्होंने हनन किया, उस केसरी का नाम कौन नहीं जानता? सुलोचना बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। उसी के पतिव्रत धर्म के बल से मेघनाद अजेय हो गया था। सुलोचना के पास खबर पहुँची कि मेघनाद मारा गया, तो उसने एकदम विश्वास करने से इनकार कर दिया। उसने

कहा, राम में क्या शक्ति है कि मेरे पति को पराजित करे, जो बारह वर्ष नींद मारकर अखंड ब्रह्मचारी रहेगा, वही उन्हें पराजित कर सकेगा, नहीं तो पति का बाल बाकाँ करनेवाला किसी माता ने नहीं जन्मा है। उसकी प्रचंड मूर्ति और तीक्ष्ण वाणी सुनकर दास-दासी भय से थर-थर काँपने लगे। उसका क्रोध सीमा से बाहर हो गया। उसे अपने पति की मृत्यु पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। तब एक दासी ने हाथ बाँधकर कहा—

देवि, सत्य ही लक्ष्मण ने आज उनका वध कर डाला। बस, लक्ष्मण के नाम में बिजली का प्रभाव था। उसे सुनते ही सुलोचना का लाल मुख पीला पड़ गया। आँखों का प्रकाश बुझकर अंधकार छा गया। उदंड मुख नीचे झुक गया। हाँ, तब तो मैं निश्चय विधवा हुई, यही उसके मुख से निकला, और वह भूच्छित होकर धरती पर गिर गई। उसे लक्ष्मण के ब्रह्मचर्य पर उतना ही विश्वास था, जितना अपने पतिव्रत-धर्म पर।

लक्ष्मण वास्तव में ऐसे ही आदर्श ब्रह्मचारी थे। जिस समय राम सीता की तलाश में मूक पर्वत पर आकर सुग्रीव से आभूषण पाकर पहचानते हैं और लक्ष्मण को दिखाकर पूछते हैं कि क्या ये आभूषण सीता के हैं ? तब लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

केयूरं नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम्;

नूपुराण्येव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।

मैं इन भुजवंदों को नहीं जानता, क्योंकि कभी उनको नहीं देखा, और न इन कुंडलों को ही जानता हूँ। हाँ, इन बिछुओं

को पहचानता हूँ, क्योंकि चरण-वंदना करती बार नित्य देखा करता था ।

इन वाक्यों का कथन करनेवाला वीर त्रैलोक्य विजय कर सकता है, इसमें संदेह नहीं ।

बाल्यावस्था ही से जिन्हे बड़े-बड़े सिद्ध मुनियों में उच्चासन मिलता था, ऐसे प्रबल दिव्य ब्रह्मचारी व्यास-पुत्र शुकदेव का नाम सभी हिंदू जानते होंगे । जिस समय वह पिता के आश्रम से निकलकर विरक्त होकर वन को चले, तो मार्ग ही में गंगा पार करनी थी, तब कितनी ही नग्न नहाती हुई स्त्रियों ने उन्हें देखा, और नहाती रही । पर जब व्यास उन्हें ढँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने एकदम पर्दा कर लिया । व्यास बड़े अचंभित हुए । पुत्र-शोक को तो भूल गए, और कहा, देवियों ! यह क्या बात है ? पुत्र शुकदेव तुम्हारे बीच से निकल गया, पर तुमने पर्दा नहीं किया । मैं वृद्ध हूँ—तुम सब मेरी पुत्री हो, फिर मुझी से क्यों पर्दा किया । स्त्रियों ने हँसकर व्यासदेव को प्रणाम किया, और कहा—देव ! ऐसा कौन है, जो आपको न जानता हो । आप-जैसे तत्त्वदर्शी के दर्शनो से सच्ची शांति मिलती है । परंतु हे शांतिधाम मुनि, शुकदेव युवा हैं, तो क्या हुआ, वह जानता ही नहीं कि हम स्त्रियाँ हैं, और हम किस काम में लाई जाती हैं, और आप सब कुछ होने पर भी हमको जानते हैं, हमारा उपयोग भी जानते हैं । इसी से हमने आपसे पर्दा किया है । आप क्षमा करें ।



कहिए, ऐसे ब्रह्मचारी युवा की ऋषि पूजा न करें, तो किसकी करें।

पूज्यपाद शंकराचार्य ने अखंडित ब्रह्मचर्य का असाधारण प्रभाव जगत् को दिखा दिया है। उनकी अगम्य बुद्धि-वैलक्षण्य का पता उपनिषद्, व्यास-सूत्र, गीता आदि गहन पुस्तकों पर उनके भाष्य देखकर लग सकता है, जिनमें किसी से भी खंडन न किए जाने योग्य अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है।

भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी का प्रादुर्भाव और सब वासनाओं को त्यागकर एकनिष्ठ होकर धर्म-साधन और पवित्र जीवन का आश्रय लेना तथा लक्षावधि लोगों को सन्मार्ग का सीधा पथिक बनाना क्या साधारण बात है। राज्य-वैभव, यौवन के सुख, जीवन की सभी वासनाओं पर विजय प्राप्तकर कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना दुस्साध्य तप है।

जिस समय समस्त भारत में घोर खलबली मची थी, वैदिक धर्म का तेल-रहित दीपक टिमटिमा रहा था, ढेर-के-ढेर हिंदू धड़ाधड़ मुसलमान हो रहे थे, और हिंदुओं के शिखा-सूत्र पर आ बनी थी, उस समय एक ब्रह्मचारी ने ऐसी ठोकर लगाई कि मरी जाति जी उठी। यह ब्रह्मचारी यति दयानंद था। देश-भर इस प्रतापी साधु के धक्के को स्वीकार करेगा। प्राचीन ग्रंथों में हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि ब्रह्मचारीगण कैसे कठिन जीवन और व्रत-पालन करके

अपना ब्रह्मचर्य निरवाह करते थे। महाभारत में एक अद्भुत उदाहरण है—

धौम्य ऋषि के तीन शिष्य थे। उनमें से एक का नाम था उपमन्यु। गुरु ने उन्हें गाय चराने को भेज दिया। वह दिन-भर गाएँ चराते, और शाम को लाकर गुरु के घर वाँध देते। एक दिन शाम को उपमन्यु गुरु के पास गए, और प्रणाम कर खड़े हो गए। गुरु ने पूछा—“बेटा उपमन्यु, तुम क्या खाते-पीते हो, जो इतने मोटे हो रहे हो?”

उपमन्यु ने उत्तर दिया—“मैं भिक्षा माँगकर खाता हूँ।”

गुरु ने कहा—“बिना मुझे अर्पण किए भिक्षा-भोजन करना उचित नहीं।”

“अच्छी बात है।” कहकर उपमन्यु ने भिक्षा माँग सब गुरुजी के आगे धर दी। गुरुजी ने सब सामग्री ले ली। कुछ दिन तक ऐसा ही होता रहा।

कुछ दिन बाद गुरुजी ने फिर पूछा—“बेटा उपमन्यु, अब तुम क्या खाते हो, जो इतने मोटे-ताजे हो रहे हो?”

उपमन्यु ने कहा—“मैं फिर भिक्षा माँग लाता हूँ।”

गुरु ने कहा—“यह अनुचित है। दुबारा भिक्षा माँगना ब्रह्मचारी को उचित नहीं।”

उपमन्यु ने कहा—“बहुत अच्छा।”

थोड़े दिन बाद फिर गुरु ने उसे मोटा-ताजा देखकर कहा—

“अब तुम क्या खाते हो?”

उपमन्यु ने कहा—“अब मैं गायों का दूध पी लेता हूँ।”

गुरु ने कहा—“यह तो ठीक नहीं। गाएँ मेरी हैं, मेरी आज्ञा बिना तुम उनका दूध कैसे पीते हो ?”

उपमन्यु ने कहा—“अब मैं ऐसा न करूँगा।” थोड़े दिन बाद गुरु ने कहा—“उपमन्यु पुत्र, तुम अब भी मोटे-ताजे हो, अब क्या खाते हो ?”

“महाराज, मैं बछड़ों के मुँह पर लगे फेन को चाट लेता हूँ।”

गुरु ने कहा—“यह उचित नहीं है। इससे बछड़े दुर्बल हो जायेंगे।”

उपमन्यु ने कहा—“बहुत अच्छा, अब ऐसा न होगा।”

अब उपमन्यु ने विवश हो आक के पत्ते खाकर निर्वाह शुरू कर दिया। उन कड़ए, गर्म और जहरीले पत्तों को खाने से उपमन्यु अंधे हो गए, और एक कुँए में गिर गए।

जब गुरुजी ने देखा कि उपमन्यु नहीं आया, तो वह उसे खोजने निकले। वन में आवाज लगाई, तब उपमन्यु कुँए से चिल्लाकर बोला—“गुरुजी, मैं यहाँ पड़ा हूँ, और मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देता है, क्या चिरकाल से आक के पत्ते खा रहा हूँ।”

गुरुजी ने उसे निकाला, उपचार कराया, और तब उसे स्नेह से विद्या-दान दिया।

---

## चौथा अध्याय

ब्रह्मचर्य-साधन की कठिनाइयाँ और विघ्न

गीता में लिखा है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ;

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।

विषय और इंद्रिय-संयोग से जो सुख प्रथम अमृत के समान सुखकर प्रतीत होते हैं, वे परिणाम में विष के समान घातक हो जाते हैं। ये सभी सुख राजस सुख हैं।

शरीर और इंद्रिय ही जीवन की मुख्य संपत्ति हैं। यदि हमारी उँगलियों में जरा-सा काँटा चुभ जाता है, तो हमारी तमाम जीवन-शक्ति विकल होकर उधर ही लग जाती है—और इसी प्रकार यदि थोड़ा भी इंद्रिय-सुख हमें प्राप्त होता है, तो हम उसके प्रलोभन को नहीं त्याग सकते। यह एक स्वाभाविक बात है, और आज लक्षावधि मनुष्य इसी प्रकार अपने जीवन को अपनी इंद्रिय-जन्य वासनाओं पर बलिदान कर रहे हैं, जिनके विषय में उपर्युक्त गीता के श्लोक में कहा गया है कि प्रथम वे अमृत के समान मधुर प्रतीत होते हैं, पर उनका परिणाम विष के समान घातक है।

हमने अपने वैद्यकीय जीवन में इंद्रिय-वासना के अतिशय

करुण और गंभीर दृश्य देखे हैं । कुछ का उदाहरण हम यहाँ उपस्थित करते हैं—

एक राजा साहब, जो हाल ही में राज्य के अधिकारी हुए थे, शराब के बुरी तरह वशीभूत थे । जब हमने उन्हें देखा, उनकी आयु लगभग २४ वर्ष के होगी, अतिशय सुंदर, गौर-वर्ण शरीर और अत्यंत रूपवान् आकृति, परंतु उनका रंग हल्दी के समान पीला हो गया था, और मुख, हलक और आमाशय तकतमाम आहार-नली घावों से परिपूर्ण थी । कोई भी खाद्य पदार्थ, दूध को छोड़कर, उनके पेट में जाना संभव न था । पिछले आठ मास से बिना एनीमा दिए उन्हें दस्त न होता था, और लगभग पाँच मास से उनकी नींद उड़ गई थी । वह क्षण-क्षण में वमन करने की इच्छा करते थे, पर वमन होती नहीं थी । पेशाब शहद के समान था, और हृदय की धड़कन के कारण वह एक क्षण भी स्थिर होकर नहीं लेट सकते थे ।

हमसे प्रथम उन्होंने यही प्रश्न किया—देखिए, मैं शराब जीते-जी न छोड़ सकूँगा, यह आप अच्छी तरह समझ लें । फल-स्वरूप वह सुंदर भाग्य-हीन राजा उसी अल्पायु में काल का प्रांस हुआ ।

इसी प्रकार का उदाहरण एक और है । वह एक करोड़पति सेठ का एकमात्र उत्तराधिकारी युवक था । आयु २२ वर्ष । वह सूखकर काला पड़ गया था, चमड़ी भैस के समान हो गई थी, और वह प्रतिक्रिया थर-थर काँपता रहता था । ज़रा भय

दिखाने से वह उसी समय मल-मूत्र त्याग देता था। दिन में १०-२० बार मूर्च्छित हो जाता था। वह अतिशय कष्ट भोगकर शराव पीते-पीते मर गया।

बहुत-से आदमी खाने-पीने के बड़े शौकीन होते हैं, और केवल खाने-पीने में इस कदर असंतुष्ट हो जाते हैं कि वह भोजन ही उनके लिये भयानक विष बन जाता है। साधारणतया सैकड़ों ऐसे रोगियों को हम देखते हैं, जो अपनी जिह्वा को वश में नहीं कर सकते। किसी रोम के बादशाह को बाबत हमने पढ़ा था कि वह खाने का इस कदर शौकीन था कि सदैव नई-नई वस्तु खाने को माँगता था, और खाकर वमन कर देता तथा और पदार्थ खाता था। जब उसे मालूम हुआ कि अब जगत् में कोई नई वस्तु खाने को नहीं रही, तब उसने निराश होकर आत्मघात कर लिया।

हम बहुधा ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं, जिन्हें भली भाँति समझा दिया गया है कि अमुक वस्तु मत खाना, वरना मर जाओगे, परंतु वे वही खाते हैं, और खुशी से मर जाते हैं। वास्तव में यह मनुष्य की अतिशय दयनीय दशा है।

बहुत-से लोग कन-रसिया हो जाते हैं। उन्हें वेश्याओं के गाना सुनने का चस्का पड़ जाता है, और वे सहस्रों रुपए उसमें फूँक देते हैं। हमें आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि हमने ऐसे आदमियों में ऐसे लोग भी देखे, जो वास्तव में गायन-कला से बिलकुल अनभिज्ञ थे, परंतु व्यसन के वशीभूत होकर वे बिना गाना सुने नहीं रहते थे।

यह बात तो निर्विवाद स्वीकार कर ली जायगी कि विषयेंद्रिय सभी स्वादेन्द्रियों से बढ़कर है, और यह मनुष्य को जब अपना गुलाम बना लेती है, तब उसका उद्धार होना अति कठिन पड़ जाता है।

हमने ऐसे-ऐसे लंपट, कुमार्गी पुरुषों को देखा है, जो अपनी इस पशु-वृत्ति के कारण अपने शरीर की समस्त सामर्थ्य गँवा बैठे हैं, और वे अन्य स्त्री-पुरुषों अथवा पशुओं से यह कुत्सित क्रिया कराकर उसे देखने ही से आनंद का अनुभव करते हैं। हम नहीं कह सकते, मनुष्य के लिये पतन का इससे बढ़कर और कौन-सा मार्ग हो सकता है।

शरीर में मस्तिष्क और हृदय में दो जीवन-यंत्र हैं, और इन्हीं के द्वारा शरीर का संचालन होता है। इन दोनों यंत्रों से संलग्न जो जीवन-स्नायु हैं, वे विविध इंद्रियों से जीवन-केंद्र को संबंधित करती है, और इस प्रकार जीवन-केंद्र उन-उन इंद्रियों के स्वाद को ग्रहण करता है।

अब मूल प्रश्न तो यह रह जाता है कि इंद्रियों में वेग से प्रवृत्त होते हुए जीवन-केंद्र को किस भाँति रोका जाय? साधारणतया यह बात सब कोई कह सकते हैं कि जीवन का मूल-उद्देश्य इंद्रियों के स्वाद को ग्रहण करना है—जब परमेश्वर ने हमें इंद्रियाँ दीं, स्वास्थ्य दिया, यौवन दिया और सब सुविधाएँ दीं, तो इनका उपभोग क्यों न करें? इंद्रियों के विषयों को रोकने से हमें क्या लाभ हो सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर इतना टेढ़ा है कि वह सरलता से हर किसी की समझ में नहीं आ सकता। परंतु हम इसका उत्तर एक उदाहरण से देना चाहते हैं। कल्पना कीजिए, आपके पास एक लाख रुपया है, और आप उसके स्वामी हैं। उसे खर्च कर देने की आपको पूर्ण स्वाधीनता है, और उसके व्यय कर देने ही से विविध सुख-सामग्रियाँ आपको प्राप्त हो सकती हैं, तब आप उसे व्यय क्यों नहीं कर देते ?

अच्छा, आपने उसे व्यय कर दिया। जब वह समाप्त हो गया, तब आप क्या करेंगे ? उस रुपए से जो आपने सुख-सामग्री खरीदी थी, उसके चुक जाने पर आप अब कहाँ से खरीदेंगे ? आपको जिन सुखों के भोगने की आदत पड़ गई है, उसे कैसे भोगेंगे ? प्रथम जब आपको उन सब बातों का अभ्यास न था, तब उनके बिना आपको ऐसा ज्यादा कष्ट न था, पर अब जब कि आप उनके आदी बन गए हैं, क्या करेंगे ?

अवश्य ही आप घोर दुःख में पतित होंगे, और आप तत्काल समझ जायँगे कि यह रुपया हमें इस प्रकार खर्च नहीं कर देना चाहिए था, बल्कि उसका विनिमय और व्यवसाय करना था कि उसका विनिमय-प्रवाह चलता रहता।

अच्छा, एक दूसरे व्यक्ति ने वह एक लाख रुपया पाकर समझा कि यह खर्च करने के लिये नहीं, प्रत्युत व्यवसाय चलाने के लिये है। अपने जीवन का एक नियत भाग हमें इस धन के साथ परिश्रम करने में व्यय करना चाहिए, और एक नियत भाग



इसके भोग के लिये । उसने नियम और मात्रा से उस धन के साथ व्यवसाय किया । मात्रा के अंदर उसने उपभोग भी किया । फल यह हुआ कि रुपए का विनिमय-प्रवाह चल निकला, और वह सदैव के लिये उत्तम हो गया । उस पुरुष ने उसे ठीक-ठीक भोगा भी ।

अब आप देखिए, बुद्धिमान् पुरुष कौन है ? अवश्य वही है, जिसने उसका विनिमय-प्रवाह पैदा किया है ।

जो किसान बीज की उत्पादन शक्ति को पहचान एक के सौ बीज पैदा करके कुछ खाता और शेष बो देता है, वही चतुर है, पर जो केवल सब बीज खा डालता है, वह मूर्ख है ।

ठीक इसी प्रकार इंद्रियों का भी हाल है । इंद्रियों का अस्तित्व केवल भोगों के लिये नहीं । आप यदि शौर से विचार करेंगे, तो इंद्रियों के विषयों में अनेक आवश्यक उपयोग देखेंगे ।

जिह्वा-इंद्रिय केवल स्वाद के लिये नहीं, शरीर-पोषण और बोलना भी उसका काम है । कान केवल गाना सुनने के लिये नहीं, बहुत-सी काम की बातों से जीवन-केंद्र को अवगत करने के लिये हैं । आंखें केवल रूप देखने के लिये नहीं, गड्ढे में गिरने से बचाने के लिये भी हैं । इसी प्रकार जननेंद्रिय विषय-वासना के लिये नहीं, प्रजनन-कार्य और मूत्रोत्सर्ग के लिये भी है ।

आप एक अंधे आदमी को देखिए, वह कितना अभागा और लाचार है, वह पद-पद पर ठोकर खाता है, वह टटोल-टटोलकर चलता है । वह दीन-हीन की भाँति जी रहा है ।

संसार उसके सामने अँधेरी रात में सदा के लिये परिवर्तित है। आपके लिये सूर्य निकलता है, प्रभात होता है, फूल खिलते हैं, और न-जाने क्या-क्या सुंदर बातें होती हैं, पर उसके लिये अंधकार-ही-अंधकार है। आप उससे पूछिए, अपने ही मन से पूछिए कि नेत्रों का क्या उपयोग है? क्या सुंदरियों का घूरना-मात्र?

आह ! इसी प्रकार मनुष्य जड़ता में मग्न होकर वासना का दास बन जाता है, और वह तब तक अपनी इंद्रियों की शक्ति को क्षय करता रहता है, जब तक वे सर्वथा क्षीण नहीं हो जातीं।

ब्रह्मचर्य-विज्ञान का अर्थ यह है कि अपनी इंद्रियों को नियंत्रण में रक्खो। उन्हें भोग का माध्यम मत बनाओ। वे वास्तव में जीवन-व्यवसाय के विनिमय की वस्तु हैं। उनसे ज्ञान उपार्जन करना, उपार्जित ज्ञान का विनिमय करना, और उससे प्राप्त लाभ से अपने जीवन का लाभ उठाना। जो मनुष्य यह काम करते हैं, वे ही सदा को अमर हो जाते हैं।

हम उदाहरण से यह कठिन बात समझाना चाहते हैं।

आप जननेंद्रिय को ही ले लीजिए। कल्पना कीजिए, इसके उपयोग के संबंध में दो मत हैं—

१—खूब भोग विलास करो।

२—इसकी वासना को रोको, शक्ति को संचित करो, और समय पर संतान उत्पन्न करो।

पहले मत पर अमल किया गया। खूब भोग-विलास किया

गया । सहस्रों स्त्रियों से संबंध स्थापित किया गया । सब काम-धंधे छोड़ दिए गए । फल क्या हुआ—

१—आप जगत् का कोई दूसरा काम न कर सके । लखनऊ के नवाबों ने इसी रास्ते पर चलकर राज्य खोया । मुगल-तख्त भी इसी दोष के कारण गया । अनेक श्रीमंत भी इसी मार्ग से नष्ट हुए । आपका यदि कोई कार-बार, व्यवसाय है, और उसे आपने नौकर-चाकरों पर छोड़ दिया, तो वे आपको लूटकर खा गए । आपको तजुर्बा उठाने और काम सीखने का अवसर ही नहीं मिला, आप अपने नौकरों के गुलाम रहे । दो कारणों में से एक कारण यह कि व्यवसाय के विषय में आप अनाड़ी हैं, यद्यपि वही व्यवसाय आपको भोग-विलास के लिये पुष्कल धन देता है । दूसरे, आप विषय-वासना से फुर्सत ही नहीं पाते, इस कारण आप स्त्रियों के दास हो गए । फल-स्वरूप आपको अनेक मूर्खताएँ और अनर्थ भी करने पड़े ।

२—शीघ्र ही आपकी इंद्रियाँ क्षीण हो गईं । शक्ति घट गई । उसे आपने दवाइयों या मद्य आदि उत्तेजक और कृत्रिम रीतियों से पूर्ण करने की चेष्टा की, पर चूँकि क्षय बराबर जारी था, उससे पूर्ति न हुई । अप्राकृत रीति से चेष्टा करने से शरीर में विष भर गया । इंद्रियों का तेज नष्ट हो गया । मानसिक वासनाएँ भड़क उठीं । अतृप्त वासना ने आपको विकल कर दिया । अब आप इंद्रिय-सुख से रहित, किंतु अतृप्त वासना से विकल रहने लगे ।

३—शराब, औषध और अप्राकृत क्रियाओं ने आपके शरीर को भयानक रोगों का शिकार बना दिया। आप दुखी, रोगी, जरूर हो गए। आपका कार-बार भी चौपट हो गया। चूँकि आपने कभी उसे नहीं सँभाला, आप दरिद्रता, रोग और चिंता में फँस गए। आपके ऊपर विश्वासघात के आक्रमण होने लगे, और आप चारों ओर से घेरे गए। आपने कभी किसी को लाभ नहीं पहुँचाया, इसलिये आपका कोई मित्र न रहा। आप सबकी सहानुभूति से शून्य होकर अकाल ही में मर गए।

भले ही आप राजा-महाराजा या शाहंशाह ही क्यों न हों, यदि आपने यह रास्ता पकड़ा, तो आपको यही दिन देखना पड़ा। अच्छा, आपने दूसरा मार्ग ग्रहण किया। वासना पर विजय प्राप्त की, और संयम से संतान-उत्पत्ति की, तब क्या हुआ—

१—आप सद्गृहस्थ बने। सुंदरी, सुशीला स्त्री से विवाह किया। आप दोनों का दांपत्य-प्रेम बड़ा मधुर है, आपका व्यवसाय छोटा है, थोड़ी आय है, तो हर्ज नहीं, उसी में आप संयम और सावधानी से सब खर्च चला लेते हैं। आप ऋतुगामी हैं, स्त्री से मित्र-भाव रखते हैं, लंपटता के भाव आपके मन में नहीं है।

२—आपके पुत्र हुआ। वह बड़ा, उसकी शिक्षा हुई, वह शीघ्र ही आपके समान हो गया, अधिक शिक्षा पाकर वह

अधिकार-संपन्न हुआ, उसने आपका मान-गौरव बढ़ाया, उच्च पद पाया, आपकी आर्थिक अवस्था भी सुधर गई ।

१३—आपके और भी पुत्र हुए । सभी कमाऊ और सदाचारी । उनके विवाह हुए, संबंध हुए, आपके मित्र-हितैषी बढ़े । धीरे-धीरे काम आपके हाथ से पुत्रों के हाथ में गया, आप निश्चित हुए, लोक-सेवा में लगे । आत्मचित्तन में लगे । लोग आपको देखते ही आदर करते हैं । आपको श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित पुत्रों का पिता और सदाचारी गृहस्थ तथा साधु-प्रकृति का सज्जन समझते हैं । आप शक्ति-भर सबकी सहायता करते हैं ।

१४—आपके पुत्रों के पुत्र हुए । वे अधिक योग्य हुए । आपका ज्ञानदान चोटी पर चढ़ गया । आपने पूर्ण आयु पाई । आपका अनित्य शरीर नष्ट हो गया, पर आपका वंश संसार में रहा । आप वंश के निर्माता, वंश के रक्षक कहलाए । आपने अपने जीवन का, अपने शरीर का अच्छा सदुपयोग किया, आप ईश्वर के प्यारे बन गए ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से आप समझ सकते हैं कि वास्तव में इंद्रियों और शरीर का सच्चा उपयोग क्या होना उचित है ।

आप कहेंगे, यह बड़ा कठिन मार्ग है । यह सच तो है, परंतु संसार में कठिन कार्य भी होते ही हैं । फिर जो कार्य जीवन और शरीर का मुख्य कार्य है, वह चाहे भी जैसा कठिन हो, करना ही चाहिए । फिर यदि हम यह कहें कि वह उतना कठिन

नहीं, जितना लोग समझते हैं। देखिए, एक व्यभिचारी पुरुष किसी पर-स्त्री पर आसक्त है, और वह उसे प्राप्त करना चाहता है। अब आप इस बात पर विचार कीजिए कि उसके लिये उस स्त्री का प्राप्त करना कठिन है या उसका विचार त्याग देना ?

निस्संदेह उसके लिये उस स्त्री का प्राप्त करना अति कठिन है। उसके लिये उसे अत्यंत जोखिम सिर पर लेनी पड़ती है। संभव है, वह पकड़ा जाय, और उसे अपमानित होना पड़े। संभव है, उसे जान खोनी पड़े, और यदि वह अपने विचार को त्याग देता है, तो वह सभी विपत्तियों से बच जाता है। परंतु वह कठिन जोखिम ही सिर पर लेता है, और उस स्त्री को प्राप्त करने की हृद् दर्जे चेष्टा करता है।

इससे आप क्या समझे ? यही न कि उसे उस स्त्री की लगन है, और वह लगन ही उससे असाध्य-साधन कराती है, यदि ऐसी ही लगन उसके संयम और ब्रह्मचर्य के लिये हो जाय, तो उसके मन में ये भाव भी न पैदा हों कि यह कितना कठिन है।

आपने भक्त तुलसीदास का चरित्र सुना होगा। वह अपनी स्त्री को कितना चाहते थे। कहते हैं, एक बार उनकी स्त्री विना उनसे पूछे पिता के घर चली गई। वह अर्धरात्रि को ही वहाँ चला दिए। नदी पार करनी थी, और बरसाती नदी उमड़ रही थी। पार जाने का साधन न था। एक मुर्दा बहा जा रहा था, उसी को पकड़कर चढ़ बैठे, और पार उतर गए। घर पहुँचे, तो देखा, एक सर्प लटक रहा है, उसे रस्ती समझ, उसी को पकड़कर

चढ़ गए। जब स्त्री के सम्मुख पहुँचे, तब उसने आश्चर्य से कहा—“इस समय किस तरह आए?” जब उसने सब हकीकत जानी, तो कहा—“स्वामिन्! इस हाड़-मांस और मल-मूत्र से परिपूर्ण शरीर के लिये आपने इतनी लालसा की और प्रयास किया, इससे आपको क्षणिक सुख के सिवा और क्या मिलेगा? जिसमें आपका जीवन ही वूँद-वूँद होकर क्षय होगा। इतनी लालसा यदि आप परमेश्वर से लगाते, तो संसार से तर जाते।” यह बात सुनते ही तुलसीदास को ज्ञान हो गया, और उसी समय उन्होंने पत्नी को धर्म की माता कहा, और चल दिए। वह कैसे उत्कट विरागी और भक्त बने, इसे हिंदू-मात्र जानता है।

यही दशा सूरदास की भी सुनी जाती है कि एक पर-स्त्री पर आसक्त होकर जब वह उसके घर पहुँचे, तब उस स्त्री के ज्ञान देने से वह इतने लज्जित हुए कि उसी समय उस स्त्री से सुई माँगकर अपनी आँखें फोड़ लीं, और जन्म-भर अंधे रहे।

इन उदाहरणों से हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वास्तव में ब्रह्मचर्य-साधन उतना कठिन नहीं, जितना ब्रह्मचर्य-भंग है। इसमें कोई खतरा नहीं। भय नहीं। केवल अभ्यास, स्थिर-चित्तता और संयम आवश्यक है। हम आगे चलकर बताएँगे कि किस भाँति यह कठिन काम सिद्ध किया जा सकता है। और प्रत्येक पुरुष-स्त्री को उसी रीति से उस पर अभ्यास करना चाहिए।

---

## पाँचवाँ अध्याय

### ब्रह्मचर्य-साधना के पूर्व की तैयारियाँ

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य-साधना की इच्छा करे, उसे उससे पूर्व कुछ तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। इस अध्याय में हम उन तैयारियों का जिक्र करेंगे। वे इस प्रकार हैं—

- १—खान-पान का संयम।
- २—दैनिक चर्या का संयम।
- ३—विचार-कल्पना का संयम।
- ४—बाह्य संसर्ग का संयम।

#### खान-पान का संयम

कहावत है—“जैसा खाय अन्न, तैसा बने मन।”

शास्त्र में लिखा है—“अन्नो वै प्राणः।”

चरकाचार्य कहते हैं—

“अन्नो प्राणिनां प्राणः तदयुक्त्या हिनस्त्यसू।”

“विषं प्राणहरं तच्चयुक्त्युक्तं रसायनम्।”

अन्न से शरीर का पाषण होता है, और अन्न ही से वीर्य बनता है। अन्न ही से समस्त धातु बनते हैं। अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से उसकी माग और उससे वीर्य बनता है। यही वीर्य यदि शरीर



में स्थिर रह सके, तो फिर वह ओज का रूप धारण कर लेता है ।

अन्न से शरीर के स्थूल और चैतन्य सभी अवयवों का घनिष्ठ संबंध है, जो अन्न तमोगुणी और रजोगुणी हैं, उनका यत्न से त्याग करना और सतोगुणी अन्न का सेवन करना परमावश्यक है । ब्रह्मचर्य की कामना करनेवाले व्यक्ति को इस प्रकार अन्न का ग्रहण और त्याग करना चाहिए—

जौ, गेहूँ, चावल, मूँग, उर्द, अरहर, चना, मकाई का ग्रहण और शेष अन्न का त्याग ।

फल—सेब, संतरा, सरदा, अमरूद, आम, केला, नारियल, सिंघाड़ा, अनार, अंगूर, लीची, खरबूजा, तरबूज आदि ।

शाक—पालक, मेथी, मूली, मटर, गोभी, आलू, लौकी, तोरई, टिंडा, परवल, केला, कमल, ककड़ी, इनका ग्रहण, शेष का त्याग ।

बैंगन, कोहड़, करेला, अरबी, सरसों का शाक, टमाटर, इनका खासतौर से त्याग ।

मसाले—काली मिर्च, सेंधा नमक, लवंग, इलायची, जीरा, धनिया, हल्दी, मेथी, अजवायन, सौंफ, सोंठ, हरड़, पीपल, अदरक, दारचीनी, इनका ग्रहण, शेष का त्याग । राई, सरसों, खटारई, इमली आदि का खासतौर से त्याग । घी, दूध, मक्खन, मलाई साधारणतया खाए जा सकते हैं, अधिक नहीं । अविवाहित युवकों को दूध और मलाई नहीं खाना

चाहिए। दूध वीर्यविरेचक है और मलाई अनावश्यक वीर्यवर्धक। ये दोनों ही वस्तुएँ काम-वासना उद्दीपन करती हैं।

गुड़, तेल, अचार, मिठाइयाँ, खाँचे की चीजें, वासी अन्न और सब प्रकार का पक्वान्न त्याग देना चाहिए।

भोजन का समय नियत रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य-साधना करनेवाले को २४ घंटे में केवल दो बार भोजन करना चाहिए, यदि वह अविवाहित हो। एक बार दोपहर को ११ बजे के लगभग, दोबारा संध्या को ६ बजे के लगभग। यदि उसे दूध लेना है, तो भोजन के साथ सबके अंत में ले सकता है।

विवाहित स्त्री-पुरुष शयन करने के समय दूध ले सकते हैं, और वे प्रातःकाल जल-पान में ताजा और कुछ लघु पदार्थ खा सकते हैं।

भोजन के बाद सभी कोई फल खा सकते हैं। लंघन करना, समय-कुसमय भोजन करना अनुचित है। जितनी भूख हो, उससे तृतीयांश भोजन करना उचित है। भर-पेट खाना उचित नहीं। वोच-वोच में थोड़ा जल पिया जा सकता है। भोजन के पीछे अधिक जल पीना चाहिए। नदी या तालाब का साधारण जल पीना उत्तम नहीं है। कुँए या नलों का फिल्टर जल ठीक है।

दही का त्याग और छाछ का सेवन लाभकारी है।

चाय और सब प्रकार के मादक द्रव्य त्याग देने उचित हैं।

### दैनिक चर्या का संयम

ब्रह्मचर्य-साधन करनेवाले मनुष्य को इस प्रकार अपनी दिन-चर्या बनानी चाहिए—

प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम उठना, तथा सूर्योदय से पूर्व ही शौच जाना । टट्टी साफ होनी चाहिए । यथासंभव अन्य व्यक्ति के मल-मूत्र के ऊपर मल-विसर्जन न करना चाहिए । सुबीता हो, तो एकाध मील चलकर जंगल में मल-त्याग करना चाहिए, नहीं तो पाखाने में मिट्टी डालकर तब शौच जाना चाहिए ।

देर तक मल-त्याग के लिये बैठने की आदत न डालनी चाहिए । वास्तव में क्लृब्ध अधिक देर बैठने की आदत है, उसे छोड़ देना चाहिए । दुबारा यदि टट्टी जाना पड़े, तो हर्ज नहीं । पर नियत समय पर अवश्य जाना, और उसी क्रिया में समस्त मन और इच्छा-शक्ति लगा देना चाहिए ।

आबदस्त अधिक जल से लेना । उँगली से गुदा-द्वार का भीतर तक साफ करना, और अच्छी तरह मल को पृथक् कर देना चाहिए । सदैव शीतल जल का उपयोग करना चाहिए ।

इसके बाद अच्छी रीति से मुख और दाँतो को शुद्ध करना चाहिए । नित्य दंतधावन करनी चाहिए । सिर और पैरों के तलवों पर प्रतिदिन या सर्दियों में सप्ताह में दो बार और गर्मियों में एक बार खालिस सरसों के तेल को मालिश करके तब शीतल जल से स्नान करना चाहिए ।

जहाँ तक बन सके, स्नान बंद मकान में, एकांत में और बिलकुल नंगे होकर करो । नाभि से नीचे का भाग खासतौर से शुद्ध करो । पेड़ पर, गुप्तेन्द्रिय से ऊपर, जहाँ लोस उत्पन्न होते हैं, शीतल पानी का कुछ देर तरड़ा दो । फिर गुप्तेन्द्रिय

को भली भाँति जल से धोकर शुद्ध करो। खाल के नीचे जमे मैल को यत्र से पृथक् कर दो। अंडकोषों को मृदु हाथों से या साबुन से भली भाँति मल-रहित कर दो। टाँगों में अच्छी तरह साबुन लगाओ और फिर समस्त अंग में खुरखुरे तोलिए से अच्छी तरह रगड़कर सूखा कर लो। इसके बाद स्वच्छ नारियल का तेल जरा-सा हाथ में लेकर टाँगों में, अंडकोषों में, गुर्तोंद्वय में खाल के नीचे तथा पेड़ पर मल दो। चूतरो पर भी यह तेल लगा दो। इन अवयवों का भली भाँति सूखा कर ला, गीला न रहने दो।

याद लगाट वॉचा, तो उत्तम है। पर वह बहुत कसकर न बाँधा जाय। वह स्वच्छ सफेद रंग के वस्त्र का होना चाहिए। और यदि पसीने से भीग जाय, तो तत्काल बदल देना चाहिए।

स्नान के बाद हल्का व्यायाम करो। यह व्यायाम ऐसा होना चाहिए, जिससे श्वास अधिक न लेना पड़े। यदि तुम श्वास यथासाध्य रोककर दंड कर सकते हो, तो वह उत्तम व्यायाम है। नहीं तो रासमूर्ति के व्यायाम आत सुंदर और सरल हैं। इनकी विधि इस प्रकार है—

१—चित लेट जाओ। हाथों को सिर के दोनों ओर ऊपर फैला दो। पैरों को तान दो।

जोर से श्वास लो, और धीरे-धीरे सिर, धड़ और हाथों को बिना हिले उठाओ। सीना ताने रहो, मगर पेट को सिकोड़े जाओ, झुकते चले जाओ, और हाथों से पैर के अँगूठे छूने की

चेष्टा करो । मगर खबरदार रहो, घुटने न मुड़ें, और सिर हाथों से पीछे न रह जाय । अँगूठे को जोर से खींचो, और श्वास छोड़ दो । अभ्यास करने से यह क्रिया सरलता से हो सकेगी । आठ-दस बार से अधिक मत करो । और, जितनी देर में करोगे, लाभदायक होगी ।

२—उसी भौंति लेट जाओ ।

दाहना पैर और बायाँ हाथ एक साथ उठाओ, पैर का अँगूठा पकड़ लो, और खींचो, फिर दाहना हाथ और बायाँ पैर उठाओ ।

३—पैर फैलाकर बैठ जाओ । पैर ताने रहो । दोनों हाथों की चुटकियों से दोनों अँगूठे पकड़ लो । खूब खींचो । बाईं तरफ गढ़ने को जितना मोड़ सकते हो, मोड़ो, और श्वास छोड़ दो । इसी प्रकार फिर दाहनी तरफ श्वास छोड़ो ।

ये व्यायाम अपान-वायु और समान-वायु को ठीक गति में बनाते हैं । तथा प्राण-वायु को वश में करते हैं । इससे प्राणायाम का शीघ्र ही अभ्यास हो जाता है ।

इसके बाद प्राणायाम करो ।

स्वस्थ होकर पद्मासन से बैठो ।

वस्त्र ढीले कर दो ।

धीरे-धीरे नाक के रास्ते प्राण-वायु को पिओ । और पिओ, और पिओ, घबराओ नहीं । जब तक वायु को खींचते रहो, गुदा-द्वार को ऊपर खींचो । उसी भौंति खींचे रहो । जब तक वायु का

विसर्जन न करो, वायु को यथासाध्य रोके रहो। हृदय की घड़कन सुनने की चेष्टा करो। जब वह सुनाई देने लगे, ठठात् जैसे वमन करते हैं, वायु को बाहर फेक दो, और जरा सुस्ता लो। फिर उसी भाँति करो।

प्रारंभ में पाँच-छ वार से अधिक न करो, और देर तक वायु को रोकने का अभ्यास करो। वायु को ठूँस-ठूँसकर शरीर में भरो, जिससे कोई भी इंद्रिय कुछ विषय न प्राप्त कर सके। यह अभ्यास से होगा।

इसके बाद जरा दहलो, और लघु आहार करके वस्त्र पहनो। वस्त्र स्वच्छ, यथासंभव श्वेत रंग के हों। कम-से-कम भीतरी वस्त्र।

दिन में मत सोओ, और रात्रि का ११ बजे के बाद मत जागो। आग मत तापो। यथासंभव नंगे पैर घास पर घूमो। मोझें कम इस्तेमाल करो। खड़ाऊँ ज्यादा काम में लाओ। बन सके, तो मृग-चर्म या कुशासन पर कुछ समय बैठा करो।

यथासंभव सिर नंगा रखो।

संध्या-समय मत पढ़ो। रात्रि को नेत्रों से कम काम लो।

कभी-कभी तैरने या दौड़ने का अभ्यास रखो।

मूत्र, मल, छोक, डकार, अपान, निद्रा आदि के वेगों को मत रोको।

पान-तंबाकू या अन्य व्यसनो का सेवन मत करो।

खूब भ्रमण करो। कुछ समय एकांत-सेवन किया करो।

सदा हवादार जगह में सोओ। चाहे भी जितनी सर्दी हो, कभी मुँह मत ढाँको।

### विचार-कल्पना का संयम

विचारों पर तीन कारणों से प्रभाव पड़ता है। एक पुस्तकों से, दूसरे मित्रों से, तीसरे अपनी आत्मा की निर्बलता से।

खराब विचारों को उत्पन्न करनेवाले ग्रंथ भयानक ब्रेश्या के संसर्ग से कम हानिकारक नहीं। एक खराब विचारोवाले ग्रंथ को देखकर उसे खरीद लेने या हाथ में लेने का लोभ त्यागना आसान है, पर उसे पढ़ना प्रारंभ करके छोड़ना कठिन। इसलिये खरीदने या चुनने के समय जाँचोड़ी-सी दुर्बलता या गुदगुदी मन में उत्पन्न होती है कि ज़रा देखो तो इसमें क्या है, उसे वहीं नष्ट कर दो, और दृढ़ता-पूर्वक उस पुस्तक पर से दृष्टि हटा लो। मन में यह संकल्प कर लो कि हम कदापि मनोरंजन के लिये ग्रंथ न पढ़ेंगे। हम ग्रंथों को ज्ञान की वृद्धि के लिये पढ़ेंगे। वास्तव में ग्रंथ मनोरंजन की वस्तु नहीं, ज्ञान-वृद्धि की वस्तु हैं। जो लोग मनोरंजन के लिये ग्रंथ पढ़ते हैं, वे ही वास्तव में पतित होते हैं। वे ग्रंथकार, जो लोगों के मनोरंजन के लिये ग्रंथों का निर्माण करते हैं, समाज को पतित करने के दोषी हैं।

मनोरंजन की सबसे सुंदर वस्तु जगत् में बच्चे हैं। आपको यदि कभी मनोरंजन करना हो, तो आप बच्चों में जाकर खेलिए, कूदिए, हँसिए, चिल्लाइए, उन्हें खिलौने दीजिए, और उनके प्रिय बनिजिए।

ग्रंथ विचार-कल्पना को प्रौढ़ बनाते हैं। यद्यपि ऐसे ग्रंथों का देश में अभाव है, जो सरल भाषा और सरल भाव से आत्मा को सदाचार को शिक्षा दे, फिर भी हम इस काम के लिये तुलसी-कृत रामायण की सिफारिश कर सकते हैं कि संसार की सारी पुस्तकों को त्यागकर यदि हम एक ही पुस्तक का नित्य, फुरसत पाने पर, पारायण किया जाय, तो मन मदैव शुद्ध रहेगा। इस अद्भुत महाग्रंथ में मन को विकार-प्राप्त करनेवाली एक भी बात दृष्टिगोचर नहीं होती।

परन्तु ग्रंथों से सदाचार और सद्भावना प्राप्त करना ही यथेष्ट नहीं। उनसे विवेक प्राप्त कर नवीन भावना का मन में उदय करना भी बहुत जरूरी है। इसलिये ऐसे ग्रंथों को, जो मस्तिष्क को विचारने योग्य विषय दें, अवश्य पढ़ना चाहिए। धीरे-धीरे साहित्य की सूक्ष्म कलाओं में से रस लेने का अभ्यास हो जायगा।

मित्रों के विषय में हमारे विचार बहुत कटु हैं, इसका हमें खेद है। यदि हम यह कहे कि आजकल के मित्र विपत्ति के साथी तो क्या, बल्कि पाप की ओर खींचकर ले जानेवाले होते हैं, तो अनुचित नहीं। लोग समझते हैं, मित्रों ही में बैठकर उल्टी-सीधी बातें कही जा सकती और बेखटके कुकर्म किए जा सकते हैं। यह बड़ी लज्जा और शोक का विषय है।

हम प्रायः देखते हैं, जो मित्र जितना अधिक घनिष्ठ होता है, उससे उतनी ही अधिक कुत्सित चर्चा होती है। और



जिस पुरुष के अधिक मित्र हैं, उसका संयम में रहना कठिन ही है।

इसलिये जिन पुरुषों को ब्रह्मचर्य-साधना करना है, उन्हें ऐसे लंपट मित्रों से अपने को बचाना चाहिए, और विद्वान्, गंभीर और अपने से श्रेष्ठ पुरुषों को मित्र बनाने की चेष्टा करनी चाहिए, जिससे समय पर उन्हें उनसे सद्विचारों की प्राप्ति हो, और उनको सदुपदेश मिले।

अपनी आत्मा की निर्वलता से बारंवार मनुष्य बुरे विचारों की ही भावना करता है। अच्छी बातें वह सोच ही नहीं सकता। वास्तव में यह आदत है, और अभ्यास से त्यागी जा सकती है। यदि मनुष्य सदैव अपने को धिक्कार दे, और इस बात पर लज्जित हो कि मैं कैसे नीच विचारों में मग्न रहता हूँ, तो वह अवश्य ही उत्तम विचारों का अभ्यास कर सकता है, और फिर धीरे-धीरे उसकी आत्मा उन्नत और बलवान् हो सकती है। ऐसे उदाहरण बहुत हैं, जो अत्यंत नीच और कुकर्मी लोग भी अंत में संत महात्मा हो गए। उन्होंने निरंतर अभ्यास से अपनी आत्मा की दुर्बलता को दूर किया।

वास्तव में मित्र और ग्रंथ ये दो वस्तुएँ आत्मा को सदैव कमजोर या बलवान् बनाती रहती हैं। आपकी आत्मा चाहे भी जैसी दुर्बल है, यदि आप उत्तम ग्रंथ पढ़ेंगे, उत्तम मित्रों का संसर्ग करेंगे, तो आपमें निश्चय ही उत्तम भावनाओं का उदय होगा। परंतु आप चाहे भी जैसे बलवान् आत्मावाले

हैं, यदि आपको नीच मित्रों का संग प्राप्त है, तो आप अवश्य पतित होंगे। कहा भी है—

“तुख्म-तासीर, सोहवत का असर।”

### बाह्य संसर्ग का संयम

बाह्य संसर्ग के वे दोष हैं, जो नागरिक जीवन में लग जाते हैं। नगर में वेश्याएँ रहती हैं, प्रतिदिन उन पर आपकी दृष्टि पड़ती है, फलतः कभी-न-कभी आप उनके विषय में सोचेंगे ही। नाटक, सिनेमा, खेल-तमाशे, अड़ोस-पड़ोस की बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो मन को दूषित कर देती हैं। इन्हे यत्न और सावधानी से प्रारंभ में ही त्याग देना चाहिए।

ब्रह्मचर्य-साधना से पूर्व इतनी तैयारी यदि आप कर लेंगे, तो आप यह देव-दुर्लभ साधन अनायास ही कर लेंगे।

---

## छठा अध्याय

### ब्रह्मचर्य-साधन के साधारण नियम

ब्रह्मचर्य-साधन के दस साधारण नियम हैं, जिन्हें बाल, युवा, वृद्ध, प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों को यथोचित रीति से विचार कर पालन उसे करना चाहिए।

१. १. अष्ट प्रकार मैथुन-त्याग—अष्ट प्रकार मैथुन का जिक्र हमने, संक्षेप से, प्रारंभ के अध्याय में, किया है। यहाँ हम विस्तार से वर्णन करेंगे। अष्ट मैथुन ये हैं—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्;

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।

एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।

स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निर्वृत्ति।

स्मरण—बहुत लोगों की आदत होती है कि सदैव स्त्रियों का चिन्तन किया करते हैं। जो अपने को शुद्ध विचारोंवाला समझते हैं, वे अपनी ही स्त्री से बेहद प्रेम करने के कारण रास्ते में, यात्रा में, दफ्तर में सदैव स्त्री का विचार रखते हैं, उनका मन स्त्री में लगा रहता है। जो लंपट हैं, वे पास-पड़ोस, इधर-उधर की जो कोई भी सुंदर स्त्री उनकी नज़र पड़े, उसी का ध्यान

करते हैं, अपनी कल्पना को उत्तेजित करके उसके अंग-प्रत्यंगों को मानसिक नेत्रों से देखते हैं। इसका फल यह होता है कि उनके ज्ञान-तंतुओं में एक अनावश्यक उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है, जिससे उनका वीर्य अपने स्थान से उष्णता प्राप्त कर न्युत हो जाता है, और ऐसे लोगों को शीघ्रपतन आदि रोग प्रारंभ में लग जाते हैं। ऐसे लोग प्रायः स्त्रो-लोलुप होते हैं, और वे कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी मनोवृत्ति और विचार-शक्ति सदैव वहीं पड़ी ठोकर खाया करती है। इसलिये ब्रह्मचर्य की कामना करनेवाले पुरुष को साधारण समयों में दृढ़ता से स्त्रियों के संबंध से अपने विचारों को हटाकर अपने काम और अन्य विचारणीय विषयों में लगा देना चाहिए।

**स्मरण रक्खो,** बुराई को स्मरण रखना ही अधःपतन कराता है। जिनके विचारों की लड़ी बन जाती है, वे उसमें जकड़कर बंध जाते हैं। वेद में लिखा है—“तन्मे मनः शिवः संकल्पमस्तु” अर्थात् मेरा मन शुद्ध विचारोंवाला हो। इसलिये यदि बुरे विचार कभी मन में उदय भी हों, तो उन्हें तत्काल दूर कर देना चाहिए, कदापि मन में न जमने देना चाहिए।

**कीर्तन**—जैसे विचार मन में उपजते हैं, और जैसी बातें निरंतर विचारों जाती हैं, वैसी ही मनुष्य बातें भी करता है। बहुधा हम देखते हैं, न केवल युवा और युवती स्त्रियाँ, प्रत्युत अधेड़ अवस्था के पुरुष भी मिलने पर काम-वर्चा किया करते हैं।

स्त्रियों में यह बात खासतौर पर पाई जाती है। प्रायः स्त्रियाँ बिना विचारे अत्यधिक नग्न काम-वासना-संबंधी गीत निस्संकोच गाया करती हैं, और काम संबंधी चर्चा तो उनका ऐसा अनिवार्य विषय है कि यदि ज़रा देर भी पेट में रुक जाय, तो मानो उनका पेट ही फट जायगा। बहुधा देखने में आता है कि जहाँ दो दोस्तों को मुलाकात हुई कि चलो वही चर्चा, जो दोनों के मस्तिष्क और विचारों को अपना गुलाम बना चुकी थी। इसलिये यत्न-पूर्वक ऐसी चर्चाओं में अपने को उदासीन बनाना चाहिए। इस प्रकार की बातचीत भी मन में विकार तथा शरीर के रक्त-प्रवाह में उष्णता पैदा करके वीर्य को निज स्थान से च्युत करती है।

जो मनुष्य मन में काम-संबंधी विचारों एवं भावनाओं को निरंतर रखते हैं, वे प्रथम उस लज्जास्पद विषय को चर्चा अपने अति घनिष्ठ मित्र से करते हैं, और धीरे-धीरे वे अधिक निर्लज्ज हो जाते हैं, और अधिक खुल्लमखुल्ला सबसे ऐसी बातें कहने लगते हैं। ऐसी ही मंडली में शरीक होना उन्हें अच्छा लगता है। जो इन बातों से उदासीन रहते हैं, उनकी वे दिल्लगी उड़ाते हैं। जब कोई नहीं होता, तो गंदे गाने, राज़लें या गीत गुनगुनाया करते हैं। उन गंदे शब्दों को मुँह से उच्चारण करना, जो वास्तव में उनके मन में रमे हुए हैं, उन्हें बड़ा प्रिय प्रतीत होता है, और इससे उन्हें सुख मिलता है।

ऐसे लोग प्रायः अपने दुराचरण या लंपटता के उदाहरण बड़ी ढींग के साथ मित्र-मंडली को सुनाया करते हैं।

ऐसे लोगो को इस प्रकार की मंडली में सम्मिलित होने से बचना चाहिए। यदि उनका या उनके किसी मित्र का ऐसे कुकर्म में प्रवृत्त होने के कारण कभी अपमान हुआ हो, तो उसकी तारीख-मात्र अपने कसरे में टांग देनी चाहिए, जिससे उसकी उन्हें याद नो रहे। डायरी में भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख कर रखना चाहिए, और जब वैसी दुर्श्चिताओं का तार बँधे, उन्हें पढ़ना चाहिए।

इस मानसिक-कुष्ठ रोग से बचने का एक उपाय यह भी है कि जहाँ इस प्रकार की चर्चा चले, न जाय। कोई मित्र यदि मित्र-मंडली में वैसी चर्चा चलावे, तो उससे कहे, फौरन् उस स्थान से चला जाय, या मित्रों को ही त्याग दे। पवित्र और गंभीर विचार-पूर्ण ग्रंथों का अनुशीलन करे। जितेंद्रिय पुरुषों का सहवास करे। नित्य अपनी दिन-चर्या लिखे, और निर्भीकता से अपनी मानसिक दुर्बलताओं को भी लिखता रहे, और सदैव अपनी भूलों और मूर्खताओं पर पश्चात्ताप करता रहे।

क्रेलि—बहुत लोगो की आदत होती है कि वे स्त्रियों में बैठकर हँसी-मजाक करते, हँसते और झुहुलवाजो किया करते हैं। छीना-झपटी या आँखमिचौनी के बहाने उनके अंगों को स्पर्श करते हैं।

इन सब बातों से काम-वासना बढ़ती, अंगों में उत्तेजना उत्पन्न होती तथा वीर्य अपने स्थान से च्युत होता है।

जब कुचिताओं के कारण मनुष्य को नियत भ्रष्ट हो जाती है, और निरंतर उसी प्रकार की बातचीत करने से उसकी आँखों का शील नष्ट हो जाता है, तो मनुष्य को स्त्रियों के पास उठने-बैठने और विषय-वासना-संबंधी बातें करने का वाव हो जाता है। धीरे-धीरे वे स्त्रियों के इस प्रकार अधीन हो जाते हैं कि उनकी उचित-अनुचित सभी आज्ञाएँ अंगों की भाँति स्वीकार करने लगते हैं।

बहुधा पास-पड़ोस की कुमारी कन्या या विधवा इस प्रसंग के बीच में आया करती हैं। अथवा किसी गरीब पड़ोसी या मित्र की स्त्री। जिन पुरुषों के मानसिक विचार स्वच्छ नहीं हैं, वे चारो शाने ऐसे अवसरों पर गिर जाते हैं, पर मनुष्य चाहे भी जैसी गहराई में उतर जाय, उसे अपनी परिस्थिति का ज्ञान तो होता ही है। बुद्धिमान् को चाहिए कि उस ज्ञान से लाभ उठावे, और कुछ दिन के लिये स्थान छोड़ अन्यत्र चला जाय, और कठिन कामों का भार सिर पर ले ले। सारी शक्ति उधर लगा दे, और मन तथा शरीर को सदा काम में जोतकर थका दे। साथ ही व्यायाम करके शरीर से खूब पसीना निकाले।

प्रेक्षण—इसका मतलब है घूराघूरी। यह घूराघूरी की आदत बड़े-बड़े शरीरज्जादों का है। बुढ़ों तक में देखी है। स्टेशनों पर, मेलों में, स्नान के घाटों पर और विवाह-शादी के अवसरों पर यह घूराघूरी खूब ही चलती है।

हम यह मानते हैं कि सृष्टि की सुंदरता मन को आकर्षित

करती है। सुंदरता और शृंगार करना या उसे देखना तथा सराहना बुरा नहीं। घर की मा-बहनें भी शृंगार करती हैं, परंतु शृंगार देखना या शृंगार करना ये दानो यदि काम-वृत्ति के आधार पर हों, तो वे मैथुन में शरीक हैं। सौंदर्य और शृंगार में पवित्र स्नेह और चाव की दृष्टि होना सहृदयता का चिह्न है। परंतु जिन्हें विषय-वासना की चाट लगी है, वे सदैव ही कुत्सित रीति से उसे देखते हैं। जिन्हें ऊँट की-सी गर्दन उठाकर स्त्रियों को घूरने का चस्का पड़ जाता है, वे बार-बार पिटने और गालियाँ खाने पर भी हँसते ही रहते हैं।

इस कुरुचि से बचने के लिये सबसे प्रथम घर की और शरीर की तड़क-भड़क नष्ट कर देना। सादा और स्वच्छ वेश रखना। शुद्ध भावनाएँ मन में रखना। प्रकृति के सौंदर्य की ओर मन लगाना। सिनेमा, मेला, बाजार आदि की अपेक्षा जंगल, वन, नदी आदि की सैर करना। घर में भी प्राकृत चित्र रखना।

गुह्य भाषण—एकांत में स्त्रियों से मिलने की घात लगाना, और अपनी काम-वासना-मंवंधी अभिसंधि प्रकट करना। जो पुरुष उपर्युक्त दोषों में आगे बढ़ जाता है, उसके लिये गुह्य भाषण भी एक प्रकार से अनिवार्य हो जाता है। यह अत्यंत जोखिम से परिपूर्ण काम है, और इसमें प्रायः खून-खराबी हो जाती है। यह न भी हो, तो सीधी-सादी पराई स्त्री के मन में लालसा की झूठी आग भड़काकर उन्हें पति और परिवार से अविश्वासिनी बनाना कितना नीच कर्म है।



संकल्प—जब पूर्वोक्त पाँचों प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ती हैं, तब अमुक स्त्री से मैं कुकर्म करूँगा, यह संकल्प हो जाता है। उस समय मनुष्य अंधा हो जाता है, और चोरी, खून करना तथा हथेली पर जान रखना उसके लिये साधारण बात हो जाती है। मानो हज़ारों बोतलों का उसे नशा चढ़ा हो। यहाँ तक पहुँचकर मनुष्य यदि सफल होता है, तो पतन और पाप—और यदि निष्फल हुआ, तो क्रोध, हिंसा और उसका राक्षसी परिणाम हो जाता है।

अध्यवसाय—संकल्प के अनुसार चेष्टा करना। इसमें ज्ञान, शील, लज्जा आदि गुण तो अतल पाताल में चले जाते हैं, और मनुष्य राक्षस होकर उचित-अनुचित सभी कृत्य कर डालता है। पुरुष अपनी पत्नियों को ज़हर पिलाते हैं, और स्त्री अपने पति की छाती में छुरा भोंकती है। पेट के बच्चे को गला घोटकर मार डालती है। यहाँ मृत्यु और जीवन एक पागल का खेल हो जाता है।

क्रिया-निवृत्ति—प्राकृत या अप्राकृत किसी भी रीति से वीर्य-पात करना ही क्रिया-निवृत्ति है। इसके बाद मनुष्य को होश आता है, विवेक का उदय होता है, पर “अब पछताए होत का, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।”

२. सदाचार का प्रालम्ब—सदाचार के जो नियम मनु ने बताए हैं, वे इस प्रकार हैं—

मनुष्य को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि जिसका

सेवन राग-द्वेष-रहित विद्वान् नित्य करे, और जिसका अंतःकरण अनुमोदन करे, वही काम करे। इस संसार में अति कामात्मता और अति निष्कामता भी ठीक नहीं। सदा ज्ञान-योग और कर्मयोग यह सब कामना ही से सिद्ध होता है। काम संकल्प का मूल है, और सकल्प से पुण्य कार्य होते हैं। यम, धर्म, व्रत सब संकल्प से ही होते हैं। निष्काम की कोई क्रिया नहीं है। वेद, स्मृति, सदाचार और अपने अंतःकरण की स्वीकृति, ये चार धर्म हैं। जो अर्थ और काम में आसक्त हैं, उनके लिये धर्म-ज्ञान कहा गया है। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि विषयों में जाती हुई इंद्रियों को दौड़ते घोड़े के समान रोककर संयम में रखे। इंद्रियों के प्रसंग से अनेक दोषों का प्रकटीकरण होता है, उन्हें दबा रखने ही से सिद्धि-लुप्ति होती है। काम की तृप्ति भोगों से कदापि नहीं होती। धी डालने से अग्नि सदैव बढ़ती है, इसलिये इंद्रियों को वश में करके मन का संयम करके सब अर्थों की उत्तम प्राप्ति करे। सुनकर, छूकर, खाकर, सूँघकर जो मनुष्य न प्रसन्न हो और न ग्लानि करे, वही जितेंद्रिय है।

३. मल, मूत्र, छीक, डकार, जम्हाई, नींद, भूख, प्यास आदि वेगों को कदापि न रोके। समय पर अपना आहार-विहार यथार्थ और संयम में बनाए रहे, परंतु काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक वेगों को सदा रोकता रहे। इंद्रिय रूपी घोड़ों की लगाम सदैव खिंची रखे, नहीं तो किसी अंधेरे गड्ढे में ले गिरेंगे।

४. समय पर हितकारी और थोड़ा बोले ।

५. शरीर-रक्षा का सदैव ध्यान रखे । स्वास्थ्य के नियमों के विपरीत कुछ न करे । सदैव नीरोग रहने की चेष्टा करे ।

६. साहस के कर्म जैसे अपनी शक्ति से अधिक बोझ उठाना, बड़ी नदी को तैरना, अपने से बलवान् से लड़ना, अगम्य स्थानों में घुसना आदि न करे ।

७. शराब, भंग, चरस, हुक्का, चाय, काफी आदि न पीवे ।

८. पापी, दुराचारी, गर्भहंता, पतित, पागल और देश-द्रोही का संग न करे । सदा मध्यम वृत्ति का होकर चले । अति किसी भी काम में न करे ।

९. किसी का पहना वस्त्र न पहने, जूठा न खाय, किसी के बिस्तर पर न बैठे, न सोवे । इससे संसर्गज रोग लग जाते हैं, और दूसरो के चित्त का प्रभाव भी पड़ जाता है ।

---

## सातवाँ अध्याय

### ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल

युवक के लिये १६ वर्ष की आयु से लेकर २४ वर्ष की आयु तक और युवती के लिये १२ वर्ष की आयु से १८ वर्ष की आयु तक प्रकृत भयकाल है, जिसमें ब्रह्मचर्य-व्रत भंग हो सकता है। युवती और युवा दोनों ही इस आयु के बीच की संधि में अपने जीवन-क्रम को अतिक्रमण करते हैं, अर्थात् वे किशोरावस्था त्यागकर यौवन में पैर रखते हैं। इस काल में यौवन का विकास होने के कारण शरीर के सभी भागों में एक क्रांति-सी मच जाती है, स्वर बदल जाता है, भावनाएँ बदल जाती हैं, अंग बदल जाते हैं। नींद, भूख, रुचि, उत्साह सबमें परिवर्तन हो जाता है।

बालिकाओं में इस समय ऋतु-धर्म होना प्रारंभ होता है, और ऋतु-दर्शन होते ही उनकी छातियाँ उठने लगती हैं। इन दोनों ही कारणों से उनके शरीर में एक जिकल आनंद की लहर का उद्गम होता रहता है, और स्वाभाविक रीति से उनका ध्यान जननेन्द्रिय की ओर खास तौर पर आकृष्ट होता है। इस समय जननेन्द्रिय में एक प्रकार का पतला स्त्राव होने लगता है। खासकर ऋतु-दर्शन के प्रारंभ के दिनों में उस

आव में एक विशेष गुदगुदी होती है, जो बालिकाओं का ध्यान हठात् जननेन्द्रिय की विशेषताओं की ओर आकृष्ट करती है।

युवक बालको में इस अवस्था में मृच्छों के स्थान पर और जननेन्द्रिय के ऊपर के भाग पर लोम का उद्गम होता है पिछली रात्रि को जब मूत्राशय में मूत्र भरा रहता है, विशेष लिगोद्रेक होता है। इन कारणों से स्वाभाविक मानसिक प्रेरणाओं से भी उनका विशेष ध्यान जननेन्द्रिय की वनावटों की ओर आकृष्ट होता है, और वे बारंबार उसकी चितना करते हैं।

बालक और बालिकाएँ इस अवस्था में बहुधा ससवयस्क बालक-बालिकाओं से धींगा-मुश्ती करना, लपट-फपट करना, चिपटकर सोना, एक दूसरे को नंगा देखना और कभी-कभी जननेन्द्रिय-संबंधी बातें करना बहुत पसंद करते हैं। इससे उन्हें विशेष सुख-प्राप्ति होती है। प्रायः बालक-बालिकाएँ इस आयु में जननेन्द्रिय को हाथ से स्पर्श करने में सुख पाते हैं, क्योंकि एक प्रकार के मैल के उत्पन्न हो जाने से, जो उस अंग में एक विशेष प्रकार के प्रवाही स्त्राव से जम जाता है, मोठी खाल बहुधा हो जाती है, इस कारण उनका उधर ध्यान जाता है। वे उसे मसलते हैं, और इसमें सुख प्राप्त होता है। धीरे-धीरे वे इससे कुटेव सीख लेते हैं।

वास्तव में यह ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल है। इस

काल में नीचे-लिखी बातों की सावधानी माता-पिताओं को प्रारंभ ही से रखनी चाहिए—

१—बालक और बालिकाएँ नित्य ही ताजे पानी से बहुत अच्छी तरह स्नान करें। उनके गुप्तांग बहुत अच्छी रीति से धोकर स्वच्छ कर दिए जायें। माता-पिताओं को चाहिए कि इस आयु से पूर्व ही बच्चों की अपने गुप्तांगों को स्नान के समय भलीभाँति साफ करने की आदत डालें। इस बात का भय न करें कि उन्हें कोई बुरी आदत लग जायगी। क्योंकि यदि यौवन-आगम के पूर्व ही से उन्हें अभ्यास होगा, तो उन्हें पूर्व-कथित भय बहुत कम होगा। सप्ताह में एक आध बार गुप्तेन्द्रियों के भीतरी भाग में जरा-सा घी या चमेली का तेल या वेसलीन लगा देने की भी उन्हें आदत डाल देनी चाहिए, जिससे खज या सुरसुराहट पैदा ही न होने पावे। माता-पिताओं को इस मामले में संकोच या लज्जा करना पाप है।

२—बच्चों को यौवन-आगम से प्रथम ही सोने से पूर्व पेशाव कर लेने की और एक बार फिर २ बजे के लगभग उठकर पेशाव करने की आदत डाल देना चाहिए, जिससे उनके मूत्राशय में पेशाव भरा न रहे। यौवन-आगम के काल में तो अनिवार्य रीति से उन्हें रात्रि को दो बार पेशाव करने को उठा देना चाहिए। हम जानते हैं कि इस विषय में माता-पिता प्रारंभ ही से बड़े अज्ञान रहते हैं। बच्चे प्रायः कपड़ों में

पेशाव कर देते हैं, पर उन्हें इसकी चिंता नहीं रहती। वास्तव में यह बहुत महत्व-पूर्ण प्रश्न है।

३—इस बात की कड़ाई से दृष्टि रखनी चाहिए कि इस आयु में बच्चे परस्पर स्पर्श दोष से बचें। ऐसे खेल न खेलें, जिनमें अधिक धींगा-मुश्ती और लिपटा-फिपटी हो। रात्रि को कदापि एक शय्या पर दो बालक न सोने चाहिए, चाहे भाई-भाई या बहन-बहन ही क्यों न हों। न वे नंगे परस्पर देखें। इस अवस्था के कुमार-कुमारियों को सदैव हो खुले में स्नान करना चाहिए।

४—इस बात का ध्यान रखो कि वे अनियमित रीति से बारंबार पाखाने में तो नहीं जा बैठते, और वहाँ देर तक तो नहीं बैठे रहते। युवकों को यदि जंगल में शौच-क्रिया के लिये ले जाया जाय, तो बहुत अच्छा है। स्वस्थ शरीर हो, तो उन्हें ठीक समय पर शौच जाने के लिये विवश करो।

५—भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र ही रात्रि को सोने के समय दूध पीने की रीति है। बच्चों को माताएँ प्रायः सोते से जगाकर दूध पिलाती हैं, और वे नींद ही में दूध पी जाते हैं। हमारा यह कथन है कि यौवन-आगम के काल में कुमार युवकों-युवतियों को इस प्रकार दूध हरगिज न पिलाया जाय। इस प्रकार रात्रि को दूध पीना ब्रह्मचर्य-भंग में सहायक है। दूध वास्तव में जहाँ बहुत-से गुण रखता है, वहाँ वह वीर्य-विरेचक भी है। खासकर सोने के समय पीना। ऐसे बालकों

को भोजन के साथ यथेष्ट दूध दिया जाय, जो ज्यादा न उवाला गया हो। एक-दो उफान आए हो, तथा ज़रा गुनगुना रह गया हो। ऐसे बच्चों को दही भी बहुत कम देना चाहिए। हाँ, ताजा छाछ यथेष्ट पिलाना चाहिए। अचार, खटाई, चटनी, चाट, पकौड़ी, मसाले कतई न देने चाहिए। सूखे मेवे और मिठाइयों बहुत कम। फल और साधारण भोजन उनकी गिज़ा होनी चाहिए।

६—बालक और बालिका दोनों ही को इस काल में भ्रमण और लघु व्यायाम कराना अत्यंत आवश्यक है, पर अधिक नहीं। उन्हें सदा प्रसन्न और कार्य में संलग्न रखना। बहुत-सी कथा-कहानी तथा निर्दोष हास्य की चर्चा खासकर सोने के समय करना उचित है। सोने के लिये बहुत गुदगुदा गद्दा नहीं। बिलकुल बंद मकान भी न हो। वे मुँह ढाँपकर न सोएँ। वस्त्र, जो वे पहने, ऐसे हो कि कोई अंग अनुचित रीति से न कसा रहे। न वे अधिक ढीले ही हो।

७—दिन में कदापि न सोवें। न रात्रि को जगें। न वे खराब साहित्य पढ़ें, न निठल्ले रहें। उन्हें अधिक समय बड़े आदमियों के साथ रहकर व्यतीत करना चाहिए।

---



## आठवाँ अध्याय

बच्चों के प्रारंभ ही से ब्रह्मचर्य-व्रती बनाने की विधि

यह बात ध्यान-पूर्वक समझ लेनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य-साधना एक प्रकार का अभ्यास है। यह अभ्यास शारीरिक और मानसिक दोनों ही भाँति का है। और, इसे बाल-काल से ही करने से इसका ठीक फल मिल सकता है।

सातवें अध्याय में हम जिन उपायों को चर्चा कर चुके हैं, उन पर ठीक-ठीक अमल करना चाहिए। खासकर परस्पर स्पर्शास्पर्श और गुप्तेन्द्रियों को स्वच्छ रखने की सावधानी रखनी चाहिए।

सबसे भयानक बात, जो बच्चों के चरित पर प्रभाव डालती है, माता-पिताओं के साथ एक कमरे में सोना है। बड़े-बड़े शहरों में इस प्रकार के दृश्य प्रायः देखे जाते हैं कि एक ही घर में जवान और वृद्ध सोते हैं, और केवल अंधकार ही उनका पर्दा है। लोग बच्चों को नादान या सोता हुआ समझकर कुचेष्टाएँ करते हैं, परंतु उन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उस समय बच्चे यदि समर्थ नहीं होते, तो समर्थ होने पर वे कुचेष्टाएँ करने लगते हैं। ऐसे कुसंस्थानों और दृश्यों से बच्चों को सर्वथा बचाना चाहिए।

स्कूल और स्कूल के मास्टर बच्चों के चरित्र के लिये अतिशय भयानक हैं। इन किराए के टट्टू मास्टरों के ऊपर अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा का भार सौंपकर निश्चित हो जाते हैं, और वे उन्हें बेत और गालियों की सहायता से सब कुछ सिखा देते हैं। यह बड़ी ही लज्जा की बात है कि पिता अपने बच्चों को परीक्षा में पास होने के लिये तो इतनी कड़ाई का बंदोबस्त करते हैं, परंतु उनमें मद्गुणों और उच्चता के भावों को उत्पन्न होने की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते।

सत्य भाषण, बड़ों का सम्मान, नम्रता, दया और लज्जा तथा प्रेम का बीज बच्चों में स्वभाव से ही होता है। यदि उन्हें भय दिखाकर साधारण बातों पर झूठ बोलने को लाचार न किया जाय, उनसे निकम्मी ठिठोलियाँ न की जायँ, उन्हें शासन में, किंतु प्रेम-पूर्वक रक्खा जाय, उन्हें रोगियों की सेवा तथा अनाथों में प्रेम और दारद्रो के प्रति सहानुभूति की शिक्षा दी जाय, तो प्रत्येक बालक एक आदर्श चरित्रवान् बालक बन सकता है।

यह बड़ी घृणा की बात है कि बालकों से दूल्हा-दुलहिन की बातें कही जाती हैं। उनकी गुप्तेन्द्रियों के संबंध में हास्य किया जाता है, और कुवेष्टाओं पर माता-पिता हँस देते हैं।

घरों में गंदे भाव-पूर्ण चित्र न रखकर उत्तम महान् पुरुषों के चित्र रखने चाहिए, और समय-समय पर उन चित्रों के चरित्रों

का वर्णन करके उनके हृदयों में उन पुरुषों के गुणों का बीज अंकुरित करना चाहिए। नाच-तमाशे, बाइसकोप आदि में बच्चों को ले जाना हरगिज उचित नहीं है।

ग्यारह वर्ष की आयु में धर्म पर सिर कटानेवाले हकीकत और दीवार में जोवित चुने जानेवाले जोरावर भाई तथा ध्रुव-प्रह्लाद-जैसे वीर पुरुष क्या अब पैदा नहीं हो सकते ? अवश्य हो सकते हैं।

छोटे बच्चों को बिगाड़ने में सबसे बड़ा हाथ घर के नौकरों का होता है। इन पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए। कहार, धीवर, कोचवान, माली आदि देख-भालकर बड़ी आयुवाले आर बाल-बच्चेदार रखने चाहिए। ये लोग पैसे चुराने से अपनी शिक्षा आरंभ करते हैं। बच्चों से पैसा चुरवा-चुरवाकर मिठाई का लालच देते हैं। पीछे उन्हें तरह-तरह से फुसलाकर उनमें हिल-मिल जाते हैं। बहुधा उन्हें अपनी कोठरियों में ले जाते, और उन्हें कुसित चेष्टा सिखाते हैं। पीछे अप्राकृत व्यवहार करते हैं। ये बालक सदा फिर इनसे डरा करते, और इनके अधीन रहते हैं।

इसी श्रेणी की घर में घाने-जानेवाली नीच जाति की स्त्रियाँ, कुमारी, विधवा बहू-बेटियों की दूती बनकर बदमाशों का संदेश देती और फुसलाती हैं, और अंत में भगा ले जाती हैं। इन स्त्रियों को बहू-बेटियों से कभी एकांत में बात नहीं करने देना चाहिए। इनके चरित्र की खूब परताल रखना

चाहिए। जवान कन्याओं को स्कूल में भेजने से पूर्व सब बातों पर खूब सावधानी से विचार कर लेना तथा निगरानी करना बहुत आवश्यक है।

कन्याएँ स्वभाव से ही पक्षी की भाँति चपल और प्रसन्न रहनेवाली हुआ करती हैं। स्वच्छ नेत्रों से बिना संकोच हर किसी की ओर देखने लगना पवित्र कौमार्य का एक लक्षण है। कन्या एकाएक सकुचीली, भयभीता और गंभीर हो जाय, तो अवश्य उसके कारणों की जाँच करनी चाहिए। हमजोलियों का भी अभिभावकों को पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। गाने-बजाने में उन्हें कभी मर्यादा से बाहर नहीं निकलने देना चाहिए।

देहातों की अपेक्षा कस्बों और नगरों में बच्चों के बिगड़ने का अधिक भय रहता है। गाँव के सीधे-सादे लड़के गाँव की पढ़ाई समाप्त करके जब निकट कस्बे के स्कूलों में पढ़ने को आते हैं, तो उन्हें वहाँ कुछ नयापन दीखता है। अच्छी इमारत, मेज-कुर्सी, ठीक तराश के कपड़े और चटपटे शहरी माथी और चाट-पानी। प्रथम वे कुछ संकोच से रहते हैं, फिर सबमें मिल जाते हैं। शहर के कुछ लुच्चे लड़के अपना उल्लू साधते हैं। कुछ ठगने या उनसे अप्राकृत व्यभिचार करने के लिये उनसे मीठी-मीठी बातें करते, दोस्ती जताते, उनके लिये खर्च करते और उन्हें फाँसकर अपने रंग में रँग देते हैं। ये लड़के शीघ्र ही उनसे मिल जाते और दुर्गुणों में फँस जाते

हैं, क्योंकि ये प्रायः भोले होते हैं। इन्हें कुछ भी तजुर्बा नहीं होता। माता-पिता की तरफ से सँभाल भी नहीं की जाती, और कोई हितैषी इनको सावधान भी नहीं करता। वोडिंग में रहकर परस्पर प्रीति करने लगते, स्पर्शास्पर्श बढ़ाते, एक शय्या पर सोते, परस्पर छेड़ते और अंत में अप्राकृत दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं।

यदि एकाएक किसी लड़के के चेहरे की चमक मारी जाय, आवाज़ खरखरी और भारी हो जाय, उसमें भीरुता और एकांत-प्रियता आ जाय, स्फूर्ति और आनंदमय मस्ती नेत्रों में न रहे, प्रातःकाल देर से उठने लगे, पाखाने में देर तक बैठा रहे, स्नान और शरीर-शुद्धि में लापरवाह हो जाय, पढ़ने में फिसट्टो हो जाय, तो समझ लीजिए कि वह दुर्व्यसनों में फँस गया है, और अवश्य वीर्य फेकने लगा है।

माता-पिता को उचित है कि उसकी शिक्षा बंद करके उसे किसानी या किसी परिश्रम के धंधे में लगा दें।

---

## नवाँ अध्याय

### यौवन-काल में ब्रह्मचर्य

हम यह प्रथम कह आए हैं कि यौवन-आगम ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल है। उस संबंध में हमने खास-खास सावधानियाँ भी बता दी हैं। इस अध्याय में हम इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि उस प्रकृत भयकाल को वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से अधिक प्रश्रय मिलता है।

देहाती और कुपढ़ युवकों की अपेक्षा शिक्षित और खासकर उच्च शिक्षित युवक ज्यादा ब्रह्मचर्य भंग करते हैं। इसका कारण उनकी शिक्षा-प्रणाली और उस काल में रहन-सहन का ढंग तथा शिक्षा का विषय है।

हम पीछे बता आए हैं कि प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का ढंग कैसा सुंदर, किंतु कठोर था। वही कठोरता उस भयकाल से युवक का रक्षित रखती थी। वह एकांतवास, तपश्चर्या, कठोर नियम जब तक पालन न किए जायँ, हृदय ईद्रियाँ संयम में रहना कठिन है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में न केवल रहन-सहन के मृदुल और सुखकर सुबीते हैं, प्रत्युत उनके पाठ्य विषय भी उनके चरित्र के लिये भयानक हैं। इन सबके साथ खतरनाक बात

कॉलेज के होस्टलों में कुमार और विवाहित विद्यार्थियों का एकत्र एकाकी रहना है।

इन सब बातों का परिणाम युवकों के ब्रह्मचर्य-व्रत के विरुद्ध होता है। कॉलेज के हास्टलों में सुंदर सजे कमरे, इत्र-फुलेल, तैल-शीशी, कंघा, माँग-शृंगार आदि अंग-विन्यास एक प्रकार से शिक्षा के अंगों में सम्मिलित है। साइकिल की सवारी और भी घातक प्रभाव डालती है। साइकिल पर बैठने से ठीक वीर्यवाहिनी नस दबती है, और उसका जननेंद्रिय की रक्षा पर खास कुप्रभाव पड़ता है।

कॉलेजों के पाठ्य विषयों में जो सरस साहित्य होता है, उसमें प्रेम और शृंगार की पूर्ण मात्रा होती है, और अनायास ही यौवन के विकास-काल में वे कथानक और काव्य युवकों के मन में चाह और गुदगुदी उत्पन्न कर देते हैं। वह फिर उनके परस्पर की चर्चा, व्यंग्य और विनोद का विषय बन जाता है। प्रथम वे किसी वयस्क मित्र को उसी भाषा और भावों में प्रेम-पत्र लिखते हैं, फिर जरा-सा भी अवकाश पाने पर किसी भी स्त्री से, यदि वह समझ सके तो, प्रेम-पत्रों का प्रवाह जारी हो जाता है।

जो विवाहित होते हैं, उनमें बहुत-से उस विवाह से असंतुष्ट और लज्जित हुआ करते हैं, क्योंकि वह उनका विवाह उनकी रुचि और इच्छा के विपरीत, माता-पिता के रुचि और इच्छा-नुसार हुआ होता है। वह शील और लज्जा से अवनत बालिका

उनकी उपन्यास की अँगरेजी नायिका से ठीक विपरीत होती है। प्रायः वे उससे प्रेम नहीं करते, और और अप्राकृत या व्यभिचार में फँसते हैं। हम बहुत-से युवकों को इसी भाँति नष्ट होते हुए देखते हैं।

दुःख की बात तो यह है कि उन्हे कॉलेजों में शरीर-शास्त्र और आरोग्य शास्त्र की कही भी शिक्षा नहीं दी जाती। हमने कहीं भी नहीं सुना कि किसी कॉलेज के प्रोफेसर ने कभी किसी छात्र को ब्रह्मचर्य पर कुछ उपदेश दिया हो। कॉलेज में जो नामर्द कवायद, खेल और इसी प्रकार के व्यायाम सिखाए जाते हैं, वे नगण्य हैं।

यह तो स्पष्ट बात है कि छात्रगण स्कूलों ही के जीवन से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को नहीं समझते, और वीर्य-पात करना शुरू कर देते हैं। माता-पिता, संरक्षक और अध्यापक कोई भी इस विषय में न उन्हें सावधान करता, और न सद्उपदेश देता है। इसका फल स्पष्ट यह होता है कि अपक्वावस्था में वीर्य-पात करके वे क्षीण-वीर्य हो जाते हैं, और यौवन के ठीक विकास-काल में फीके, निस्तेज और रोगी बन जाते हैं। पीछे जब युवती भार्या से विवाह होता है, तब उसके साथ वह पूर्ण संभोग सुख न भोगकर चिंतित, दुखी बने रहते हैं, और उनकी गृहस्थी विषमय बन जाती है। अंत में वे जीवन-भर वैद्यों-डॉक्टरों, जंत्र-मंत्र आदि में भटकते रहते हैं। क्या यह किसी भी पुरुष के लिये दुर्भाग्य और अफसोस की बात नहीं।



यौवन-काल में ब्रह्मचर्य की जो रक्षा करते हैं, वे लोहे के समान ठोस और परम जानी एवं दृढ़ात्मा, दीर्घजीवी होते हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं। ईमाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल में साम्सन की वीरता का बहुत उल्लेख है, पर जब वह मृगनैनियों के चंचल नेत्रों का शिकार हो गया, तो उसकी वीरता हवा हो गई।

जीवन की मध्यावस्था युवावस्था है, और यह सत्य है कि वह संसार-सुख-भोग का समय है, परंतु जिस प्रकार बड़े-बड़े रईस, सेठ लोग उत्तम पदार्थ घर में भरे रहने पर भी पाचन-शक्ति के दास से तृप्त होकर नहीं खा पाते हैं, उसी प्रकार जो इंद्रियों के दास हैं, वे तृप्त होकर भोगों को नहीं भोग सकते हैं। भोगों को पूर्ण क्षमता से भोगने के लिये मनुष्य को संयम और शक्ति-संचय ही सर्वोपरि मार्ग है।

युवावस्था में ब्रह्मचर्य-सेवन के नियम इस प्रकार हैं—  
अविवाहितों के लिये—

१—यदि तुम स्कूल-कॉलेज के छात्र हो, तो नियमित रीति से प्रातःकाल अति शीघ्र उठकर कम-से-कम ३-४ मील का तेज भ्रमण करो। नित्यकर्म से प्रथम ही निबट लो। फिर स्वल्प जल-पान कर एक बार समस्त पाठ्य-विषय को विचार लो, और फिर भोजन करके कॉलेज जाओ। प्रातःकाल उठने का समय अपने कॉलेज जाने के समय से ५ घंटे पूर्व का अवश्य रखो। आध घंटे में नित्यकर्म करो, और डेढ़ घंटा भ्रमण में लगाओ। ३ घंटे पढ़ो, और १ घंटे से भोजन करके कॉलेज चल दो।

भ्रमण के समय भूम-भूमकर नजाकत से न चलो । न ढीली चुनी हुई धोती पहनकर निकलो । ज्यादा वस्त्र न पहनो, बल्कि खूब तेज चलो, जिस भाँति चीता जंगल में कपटकर चलता है । सीना उभारे रहो, मुख से साँस न लो । एक-सी चाल चले जाओ । यार-दोस्तों को साथ मत लो । बातें मत करो, तीर की भाँति जाओ, और उसी भाँति लौट आओ । आकर दूध, मुरब्बा, बिस्कुट या थोड़ा फलाहार करो, और तब पढ़ने बैठ जाओ । एकाग्र मन से सब विषयों पर, जो आज कॉलेज में पढ़ने हैं, दृष्टि डाल जाओ ।

दो पहर के भोजन में एक घंटा लगा दो । खूब चबाकर धीरे-धीरे खाओ । बीच-बीच में थोड़ा जल पिओ । अचार-मसाले मत खाओ । दूध, छाछ इस अवसर पर लो । भोजन के बाद थोड़े कच्चे मटर, चना, गाजर, मूली, अदरक आदि चीजें खूब चबाकर खाओ, और फिर बहुत अच्छी तरह मुँह शुद्ध करके कपड़े पहन कॉलेज चल दो ।

२—प्रत्येक कार्य नियत समय पर करो । ज्यादा दोस्त मत बनाओ । गप्पे उड़ाने या सुनने की आदत मत डालो । ज्यादा तकल्लुफ मत करो । हँसो, तो खूब खिलखिलाकर हँसो, पर बेहूदे ढंग से नहीं । या तो किसी से बिल्कुल बात न करो ; करो, तो खुलकर करो । मिन-मिन करके बोलना, व्यर्थ संकोचित रहना बुरा है ।

३—कॉलेज में समझो कि एक अध्यापक ही जगत् में

जिंदा है, शेष सब मरे हुए हैं। उसके मुख और वक्तव्य पर सब ध्यान लगा दो। चेष्टा करो कि जो कुछ वह कह रहा है, तुम उसे उसी समय सीख रहे हो। निश्शंक और प्रफुल्लित रहो।

४—कॉलेज से लौटकर, यदि समय हो तो, पढ़ो-लिखो—एक मन होकर शांत भाव से। ५ बजे पढ़ना बंद कर दो, और ८ बजे तक व्यायाम, खेल-कूद, गप-शप, बातचीत, भ्रमण, मित्र-मंडली का सहयोग तथा भोजन आदि करो। यदि कोई खेल पसंद करते हो, तो मर्दाने खेल पसंद करो। फुटबाल और जमनास्टिक सबसे उत्तम है।

५—८ से १० तक, एक मन होकर, अध्ययन करो, और १० बजे अवश्य सो जाओ। सोने के समय मन को शुद्ध कर लो। शीतल जल एक ग्लास पिओ। पैर जूरा गीले कर लो। यथासंभव पूर्व-पश्चिम सोया करो।

६—ऋतु-परिवर्तन के साथ अपने कार्य-विधान में अंतर कर दो, पर व्यवस्था यही रहने दो।

७—मल-मूत्र के वेग को कभी मत रोको। यथासंभव खोचे की चीजें कम खाओ। खाने में सीमा-संयम और व्यवस्था रखो।

### विवाहितों के लिये—

१—सदैव स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् शय्या पर शयन करो। यदि संतान हो गई है, तो बच्चे और माता को पृथक् कमरा सोने को दो।

२—भोजन और शयन का ठीक समय नियत करो । प्रातः-काल बहुत जल्द उठकर, यदि संभव हो तो, सपरन्तीक भ्रमण के लिये जाओ ।

३—मिर्च-मसाले, अचार और फालतू चीजें बहुत कम सेवन करो । अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ न खाकर साधारण भोजन का अभ्यास करो, और कभी ठूस-ठूसकर न खाओ । भोजन के बाद जरा टहलो, और प्रसन्न रहो ।

४—ऋतुकाल में पत्नी से सब नियम व्यवस्था से कराने का ध्यान रखो । वह किसी को छुए नहीं, स्नान न करे, हवा-खोरी न करे, परिश्रम न करे, तेल न लगावे, हँसे नहीं, शांति और विश्राम में बैठे । शुद्ध, सार्विक भोजन करे । ऋतुस्नान के बाद जब दोनों प्रसन्न हों, और दोनों में पूर्ण प्रेम हो, तब गर्भाधान-विधि की क्रिया करे ।

५—गर्भ रहने पर गर्भवती से संसर्ग न करे । उसे वीरो, विद्वानों के चरित्र सुनावे, प्रसन्न रखे, लघु और उत्तम पुष्टिकर भोजन दे । उत्तम पुरुषों के सुंदर चित्र दिखावे, सुंदर बच्चों के चित्र कमरे में रखे । उसे कभी रोने या दुखी न होने दे ।

६—प्रसव के बाद भी जब तक बालक दूध पीवे, प्रसंग न करे । यह कहा जा सकता है कि ये नियम बहुत कठोर हैं, पर हमारा कहना यह है कि जगत् में कोई ऐसा नियम नहीं, जो मनुष्य आसानी से न कर सके । वास्तव में मनुष्य मन में जितनी दुबेलता रखेगा, उतना ही कायर बनेगा । यदि थोड़ी

भी दृढ़ता और आत्मिक बल मन में हो, तो ये नियम बड़ी आसानी से पाले जा सकते हैं, और इससे पति-पत्नी में स्नेह-भाव की वृद्धि होती है।

### विधुरों के लिये—

१—यदि तुम्हारे मन में मृत पत्नी की स्मृति-चेदना है, और तुम यदि कुछ दिन पवित्र स्नेह की भावना में—जिसमें इंद्रिय की वासना न हो—उसके नाम पर कुछ काल या दीर्घकाल अथवा जीवन-भर ब्रह्मचर्य-पूर्वक काट सकते हो, तो तुम्हारे लिये यह अत्यंत प्रशंसनीय है। इससे तुम्हारे हृदय में उदारता, विश्व-प्रेम, गंभीरता, मनुष्यत्व और तेज आएगा, और तुम प्रतिष्ठित व्यक्ति बन सकोगे।

२—पर जब देखो कि संयम असंभव है, तो तत्काल विवाह कर लो। मन में इंद्रिय-वासना और लोक-भय से विवाह न करना—चरित्र और शरीर दोनों के लिये खतरनाक है। इससे तुम्हारे जीवन के पतित होने या रोगी होने का भय है। आयु तो अवश्य ही अल्प हो जायगी।

३—नव-विवाहित पत्नी की आयु की विषमता का ध्यान करो, और धीरज और संयम से मर्यादा का व्यक्तिक्रम न करो। यह संभव है, शोक के वेग को मनुष्य अन्य वासनाओं से भुलाने का प्रयत्न करता है, पर यदि ब्रह्मचर्य तुम्हें प्रिय है, तो स्मरण रखो कि अष्टविध मैथुन की भावना से वचने के लिये ही तुमने विवाह किया है।

## विधवा युवती के लिये—

जो नियम विधुर पुरुष के लिये हैं, वही विधवा के लिये भी हैं। यहाँ हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सर्वसाधारण के लिये युवावस्था में विना स्त्री या विना पुरुष के रहना भयानक है। ऐसे पुरुष-स्त्री निन्यानवे प्रतिशत मानसिक व्यभिचार में फँसे रहते हैं, जो जीवन और स्वास्थ्य दोनों के लिये प्रकट व्यभिचार से अधिक भयानक है। इसलिये हमारी खुली राय है कि जब तक इंद्रियों पर पूर्ण विजय न हो, तब तक लोक-लाज या दंभ के कारण किसी युवा युवती को विधवा या विधुर होने पर एकाकी न रहकर विवाह कर लेना चाहिए।

विधवा को कुमार से विवाह करने तथा विधुर को कुमारी से विवाह करने पर भी ब्रह्मचर्य व्रत भंग होने का भय है। क्योंकि ऐसी अवस्था में दोनों की स्थिति विपरीत होती है। और मोह की अधिकता से संयम नहीं रहता। फिर आयु की विषमता भी इसमें बड़ी बाधक है।

ऐसी अवस्था में निस्संकोच भाव से विधवा और विधुर समान स्वभाव होने पर परस्पर विवाह करें। ऐसा करने पर ही वे मानसिक व्यभिचारों से बच सकेंगे, तथा संयम करना उनके लिये सहज होगा।

---

## दसवाँ अध्याय

### गृहस्थ-जीवन में ब्रह्मचर्य

साधारण बुद्धिवाले पुरुष यह समझते हैं कि ब्रह्मचर्य का काल विवाह के प्रथम समाप्त हो जाता है। विवाह हो चुकने पर फिर यथेष्ट विहार कर सकते हैं। हम ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानते हैं, जिनका चरित्र विवाह के पूर्व बहुत ही संयम-पूर्ण रहा, परंतु विवाह होने के पीछे उनकी अत्यंत दुर्दशा हो गई, और वे बुरी तरह स्त्री-संसर्ग में पतित हो गए।

यदि सच पूछा जाय, तो ब्रह्मचर्य का महत्त्व-पूर्ण जीवन गृहस्थ-जीवन ही है। यदि गृहस्थ-जीवन में स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी नहीं रह सकते, तो समझ लीजिए, वे जीवन में ब्रह्मचर्य-पालन का आनंद लाभ नहीं कर सकते।

गृहस्थाश्रम के ब्रह्मचर्य का नियम शास्त्रकार इस भाँति बताते हैं—

“ऋतुकालाभिगमनं ब्रह्मचर्यमिवोच्यते।”

अर्थात् ऋतुकाल में अभिगमन करना ही ब्रह्मचर्य है।

यदि आप पशु-पक्षियों के स्वाभाविक जीवनो को देखें, तो आपको पता लगेगा कि वास्तव में सभी प्राणी ऋतुकाल ही में स्त्री-संसर्ग करते हैं, और इसका प्रत्यक्ष फल यह है

कि वे रोग और अकाल मृत्यु से बच जाते हैं, और प्रजनन-काल में उन्हें कुछ वेदना भी नहीं होती ।

वास्तव में गृहस्थाश्रम का उद्देश्य प्रजा-उत्पत्ति है, स्वादेन्द्रिय को स्वेच्छाचार से तृप्त करना नहीं । प्राचीन ग्रंथकार लिखते हैं—

सन्तानाथेव मैथुनम् अनी भार्यामुपेयात् ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ।

अर्थात् संतान के लिये मैथुन करें । श्रुतकाल में ही स्त्री सेवन करें । इस प्रकार करने से वह ब्राह्मचारी रहता है । विवाह के उद्देश्य में ग्रंथकार लिखते हैं—

यस्तत्रया धर्मदचरित्य सोऽनयान्तः ; धर्मं चार्थं च कामे च नातिचरतया ।

अर्थात् जो कुछ तुम धर्म-कृत्य करना है, उसके साथ कर । धर्माचरण और कामाचरण में अति न करना ।

और उसे कहना पड़ता है—

नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि ।

अर्थान् मैं कभी अति आचरण न करूँगा ।

मनुस्मृति में लिखा है—

व्यभिचारात् भर्तुं स्त्री लोके प्राप्नोति निन्यताम् ।

अर्थात् व्यभिचार से पति की पत्नी निन्दित होती है ।

जो लोग यह समझते हैं कि स्त्री बच्चे पैदा करने की मशीन और उनकी विषय-वासना का साधन है, वे भूलते हैं । वास्तव में स्त्री का महत्त्व असाधारण है । प्राचीन ग्रंथकार लिखते हैं—



अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ;  
 भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ।  
 भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्याः क्रियमेधिनः ;  
 भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्वितः ।  
 सखायः प्रचिविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ;  
 पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ।  
 स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ;  
 तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि ;  
 तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनांश्च सतीषु च ।

स्त्री मनुष्य का आधा अंग है, और वह उसकी सर्वश्रेष्ठ मित्र है । स्त्री धर्म, अर्थ और काम की मूल है, वही मोक्ष की दाता भी है । जिनके स्त्री हैं, वे क्रियावान् हैं, वे ही गृहस्थ हैं, वे ही सुखी हैं, वे ही संपन्न हैं । स्त्री एकांत में मित्र, धर्म-कार्य में पिता, दुःख में माता और सर्वत्र उत्तम सहायक है । यदि वे प्रसन्न हैं, तो सब कुछ सुखदायी है, यदि वे प्रसन्न नहीं हैं, तो कुछ भी सुख नहीं । पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे सब सती स्त्री के चरणों में हैं । और सब देवतों और मुनियों का तेज भी स्त्री के सत में है । इन गंभीर बातों से आप जान सकते हैं कि वास्तव में स्त्रियों का महत्त्व कितना है, और वे केवल पुरुषों की भोग-सामग्री ही नहीं हैं ।

प्राचीन काल में ऐसा नियम न था, जैसा आज

और न स्त्रियाँ अपनी अवस्था में पुरुषों की दासी ही बनाई जाती थी। बहुत-सी स्त्रियाँ जन्म-भर ब्रह्मचारिणी रहती थीं।

ब्रह्मचारिणी घोषा कक्षिवान् मुनि की कन्या और उपज ऋषि की पत्नी थीं। ऋग्वेद के दशम मंडल की वे ऋषि थीं। उनका कथन था—

जो पुरुष स्त्री की रक्षा करे, उससे प्रेम करे, उससे संतान उत्पन्न करे, उसे यज्ञ में भाग दे, पितृ-यज्ञ में माय ले, वह ब्रह्मचारिणी का पति होने योग्य है।

ब्रह्मचारिणी गोधा आर सूर्या भी इसी प्रकार की ऋषि-पद की अधिकारिणी थी, और उनका चरित्र और ज्ञान बहुत उच्च था।

सावित्री, दमयंती और सुलाचना के नाम जग जाहिर हैं। इनके ब्रह्मचर्य और पतिव्रत-धर्म के अमोघ प्रभाव अमर हैं, और मनुष्य-जाति के सामान्य आदर्श हैं।

सुदक्षिणा, जो महाराज दिलीप की पत्नी और दिग्विजयी रघु की माता थीं, खासतौर से वशिष्ठ के आश्रम में पुत्र-प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य से रही थीं।

सुकन्या, विपुला, धारिणी आदि स्त्रियों के नाम भी ऐसे ही पवित्र और महत्त्व-पूर्ण हैं।

सरस्वतीदेवी, जो वाणी की देवी है, ब्रह्मचर्य के बल पर ही इस श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त हुई। विद्या और ब्रह्मचर्य ही इनका महत्त्व था। वेदवती, पार्वती और सीता के तप,

श्याम तथा पवित्र चरित्र भी संसार-भर की स्त्रियों के लिये आदर्श चरित्र माने जायेंगे। देवहूति के समान ब्रह्मचारिणी स्त्री कौन है।

खेद है, पुरुषों के स्वार्थ और अविद्या के कारण स्त्री-जाति पतन के गंभीर गढ़े में गिर गई है। उसका जीवन, स्वास्थ्य, पद और सम्मान एक जीवित पशु से अधिक नहीं रह गया। हजारों वर्ष से पुरुषों ने उस पर अत्याचार किया है, और उसे अपनी वासना की दासी बनाया है, और आज न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत जहाँ भी अभ्य-असभ्य देश में जाइए, स्त्री को पुरुषों की वासना की दासी पाइएगा।

विवाहित स्त्री-पुरुषों को ब्रह्मचर्य-व्रत पालन के लिये इन नियमों का नित्य दृढता से पालन करना चाहिए—

१—कभी एक शय्या पर शयन न करो। पृथक्-पृथक् सोओ।

२—यदि संतान हो गई है, तो माता और संतान पृथक् कमरे में खोवें, और पति पृथक् कमरे में।

३—शयन से प्रथम रामायण या अन्य किसी सुंदर पुस्तक का पाठ करके स्त्री को सुनाओ, या कुछ नित्य पढ़ाओ, जिससे चित्त की वृत्ति शुद्ध रहे।

४—सदैव ही गंदे ठूठे न करो। शुद्ध परिहास करो।

५—प्रातःकाल नित्य स्त्री-पुरुष वायु-सेवन को निकलो, तथा दोनों साथ संख्या-बंदन करो।

६—भड़कीले वस्त्रादि निश्य न पहनो ।

७—सदैव ताकत की दवा न खाओ । गर्माधान के लिये परेशान मत हो । शांति, धैर्य और संतोष से गृहस्थ-जीवन को सुखी करो ।

८—परस्पर कलह मत करो, प्रेम-पूर्वक रहो । ऋतुकाल का महत्त्व समझो । विवेक और अभ्यास से इंद्रियों का दमन करो, और नियमित जीवन का अभ्यास करो ।

९—यदि स्त्री गर्भिणी हो, तो उसके मन में भी काम-वासनाएँ न आने दो । अपने विचार भी शुद्ध रखो ।

१०—नित्य स्नान करो, और ताजा, हल्का, सात्विक भोजन करो ।

---

## ग्यारहवाँ अध्याय

### अधेड़ अवस्था में ब्रह्मचर्य-सेवन

प्राचीन हिंदू-समाज की रीति यह थी कि अधेड़ अवस्था में चाहे पुरुष सपत्नीक हो या विपत्नीक, उसे ब्रह्मचर्य-व्रत से रहना पड़ता था। उसके लिये पृथक् वानप्रस्थ आश्रम का विधान था। मनु कहते हैं—

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः ;  
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ।  
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ;  
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।  
संत्यज्य आम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छेदम् ;  
पुत्रेषु भार्या निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव च ।  
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छेदम् ;  
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ।  
मुन्यन्नैर्विविधैर्मध्येः शाकमूलफलेन वा ;  
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ।

इस प्रकार गृहाश्रम में रहकर ब्रह्मचारी इंद्रियों को जीतता हुआ वन में वास करे। जब गृहस्थ देखे कि उसके सिर के बाल सफेद हो गए हैं और त्वचा ढीली हो गई है, तथा पुत्र के

पुत्र हो गया है, तब वन में जाकर बसे। ग्राम के सब आहार-विहार श्याग दे। स्त्री को पुत्र के पास रक्खे, या साथ वन में ले जाकर बसे। अग्निहोत्र किया करे, और मुनियों के अन्न, फल-फूल खाकर निर्वाह करे। मनु कहते हैं—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ;

दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।

अप्रयत्नः सुस्वार्थेषु प्राग्रचारी धराशयः ;

शरणेष्वममश्चैव वृत्तमूक्तनिवेतनः ।

उत्तम ग्रंथों का मनन करे, सब प्राणियों पर दया-भाव रक्खे, जितात्मा, सबका मित्र और दाता बने। शरीर-सुख का विशेष ध्यान न करे। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे, और धरती पर शयन करे। अपनी वस्तुओं पर विशेष ममता न रक्खे।

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैरव्यं चरन्तः ;

सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राश्मृतः स पुरुषो ध्येययात्मा ।

( मुंदकोपनिषद् )

जो शांत विद्वान् लोग वन में तप, धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में बसते हैं, वे जहाँ नाश-रहित पूर्ण पुरुष हानि-लाभ-रहित परमात्मा है, वहाँ निर्मल होकर प्राण द्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनंदित हो जाते हैं।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तथच्छेद् ज्ञान आत्मनि ;

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तथच्छेच्छान्त आत्मनि ।

( ऋग्वेदोपनिषद् )

बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से हटाकर धर्म में लगावे, और उस ज्ञान (स्वात्मा) को परमात्मा में लगावे, उस विज्ञान को शांत स्वरूप आत्मा में लगावे।

इसमें संदेह नहीं किये प्राचीन नियम बहुत सुंदर थे। अब भी जब मनुष्य का काम करते-करते शरीर और मन थक जाता है, तो वह वन के एकांत स्थल में ही अपना मनोरंजन करता है। परंतु केवल विश्राम और मनोरंजन ही यथेष्ट नहीं है, उसे लोक-सेवा का भी समय मिलना चाहिए। वह स्वाध्याय और लोक-सेवा करे।

इस अवस्था में दीर्घजीवन और स्वास्थ्य के लिये ब्रह्मचर्य-साधन बहुत आवश्यक है।

यद्यपि आजकल प्राचीन काल के समान वनवासी होकर कठिन नियमों का पालना संभव नहीं, परंतु घर में रहकर भी बहुत कुछ जीवन-क्रम ठीक किया जा सकता है। इस संबंध में ये नियम पालन किए जाने चाहिए—

१—दृढ़ता-पूर्वक पति-पत्नी परस्पर विशुद्ध संबंध स्थापित कर लेने का प्रण करें। और यत्न से उसका पालन भी करें। थोड़े ही अभ्यवसाय और यत्न से यह नियम पालन किया जा सकता है। इस प्रकार के स्त्री-पुरुषों को अपना आहार-विहार भी परिवर्तित कर लेना चाहिए। दूध और फलों का सेवन अधिक तथा अन्न का भोजन कम करना चाहिए। भोजन की मात्रा भी कम कर देनी चाहिए। पति-पत्नी को पृथक्-पृथक् कमरों में

शयन करना चाहिए। यदि शिष्यगण भी साथ हों, तो पुरुष-स्त्री दोनों को पृथक्-पृथक् शिष्य-शिष्याओं के साथ सोना चाहिए।

२—दोनों को अपनी-अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुसार रात्रि के पिछले पहर में आलस्य त्यागकर उठ खड़ा होना चाहिए, और किसी उत्तम ग्रन्थ का मनन करना चाहिए। यदि संभव हो, तो पति पत्नी को पढाता रहे। अथवा मौखिक रीति से विविध विषयों पर बातचीत, चर्चा करते रहना चाहिए।

३—दोनों को समाज की सेवा और कार्यों में अधिकाधिक भाग लेना चाहिए, और हर समय परोपकार के कार्यों में संलग्न रहना चाहिए।

४—नित्य स्नान, ईश्वर-स्तुति आदि करना तथा प्रफुल्ल रहना चाहिए। नित्य लघु व्यायाम और भ्रमण करते रहना चाहिए, जिससे शरीर हल्का रहे।

यदि पुरुष या स्त्री विधुर या विधवा है, तो अधिक आसानी से उपर्युक्त नियमों का पालन किया जा सकता है। इन सब बातों के सिवा अभ्यास और शिक्षा ही मनुष्य को ठीक-ठीक रख सकते हैं।

---



# बारहवाँ अध्याय

## वृद्धावस्था का ब्रह्मचर्य

बहुत लोग जानते हैं कि वृद्धावस्था में जब इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, और अंग का बल क्षय हो जाता है, तब आप ही काम-वासना भी शांत हो जाती है। परंतु वास्तव में यह बात सत्य नहीं है। ज्यों-ज्यों इंद्रियाँ शिथिल होती हैं, मन चंचल और बेलगाम हो जाता है, और जब इंद्रियाँ तृप्त होकर भोगों को नहीं भोग सकतीं, तब मन और भी विषयों में लालायित होता है। इस लालसा को 'बुढ़भस' कहते हैं।

बड़े-बड़े राजाओं और रईसों एवं नव्वाबों की वृद्धावस्था की विषय-वासना-संबंधी लालसा की बीभत्स कहानियाँ बहुत लोग जानते हैं, उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं, परंतु सर्वसाधारण में भी यह बात प्रसिद्ध है कि वृद्धावस्था में मनुष्य आराम करने, खाने-पीने और दूसरी प्रवृत्तियों में बहुत ही आसक्त हो जाता है। इस प्रकार मन से विषयों में आसक्त होना और इंद्रियों द्वारा वासना की तृप्ति न होना, ये दो काम प्राणों के घातक हैं। ऐसे लोग वृद्धावस्था के प्रथम चरण में ही हाट फेल होने पर या और किसी सांघातिक बीमारी में एकाएक मर जाते हैं।

जिन वृद्धों की स्त्रियाँ जिंदा होती हैं, उनकी दशा फिर भी जरा शांत रहती है। वासनाएँ भड़कती नहीं, पर विपत्ती वृद्ध पुरुषों के मस्तिष्क में कल्पित वासना एक ऐसा अशांत आंदोलन उत्पन्न करती है, जिससे उनकी निद्रा, जुवा और शरीर की नित्यक्रिया में बाधा उपस्थित हो जाती है।

जिन्होंने युवावस्था ही से अपने को जितेंद्रिय बनाया है, जिनके शरीर में यथावत् बल है, वे वृद्धावस्था में अधिक आयु भोगते तथा सुखी रहते हैं। हम प्रथम ही कह आए हैं कि यह बात अभ्यास पर निर्भर है। यदि हम हठ-पूर्वक दृढ़ धारणा से ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करें, तो यह व्रत जितना कठिन प्रतीत होता है, उतना कठिन अनुभव न हो।

प्राचीन काल में अधेड़ अवस्था के स्त्री-पुरुषों का जहाँ वन में निवास करके वानप्रस्थाश्रम में स्थित होकर मनन और अध्ययन करते हुए संयम का अभ्यास करने का विधान था, वहाँ वृद्धावस्था में संन्यासी होने का भी नियम था। यद्यपि यह नियम अति प्राचीन नहीं है। अति प्राचीन काल में तो मनुष्य वचपन से युवा और युवावस्था से वृद्धावस्था तक तपस्वी-जीवन व्यतीत करते, आढंबर-रहित हो वनों में रहते और समस्त जीवन विलास त्यागकर व्यतीत करते थे। इसके बाद जब नागरिकता की वृद्धि हुई, तब संन्यास-व्रत लेने की परिपाटी चली। संन्यास के नियम बड़े कठोर थे, उसे बराबर पर्यटन करना पड़ता था। हम संन्यास के नियम प्राचीन ग्रंथों के आधार पर लिखते हैं—

जब सब कामनाएँ जीत ले, उनकी इच्छा न रहे, पवित्रात्मा, पवित्रांतःकरण और मननशील हो जाय, तभी गृहस्थाश्रम से निकलकर संन्यासाश्रम में प्रवेश करे।

वह संन्यासी न अग्निहोत्र करे, न अपना कहीं घर बनावे। अन्न-वस्त्र के लिये ग्राम में जाय, बुरे मनुष्यों से दूर रहे, स्थिर-बुद्धि, मननशील हो परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरण करे।

न तो अपने जीवन में आनंद और न अपनी मृत्यु में दुःख माने, किंतु जैसे बुद्ध अपने स्वामी की आज्ञा की बात देखता है, वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे।

चलते समय आगे-आगे पैर धरे, सदा वस्त्र से छानकर जल पीवें, सबमें सत्य बोलें, जो कुछ व्यवहार करे, वह सब मन की पवित्रता से प्रेरित हाकर करे।

इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित, सर्वथा इच्छा-रहित, मांम-मद्यादि का त्यागी, आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे, और सबको सदुपदेश देता रहे।

सब सिर के बाल, डाढ़ी-मूछ और नखों को समय-समय पर छेदन कराता रहे। पात्री, दंडी और कुसुंभी रंग के रंगे वस्त्रों को धारण करे।

सब प्राणियों को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे। जो संन्यासी बुरे कामों से इंद्रियों का निरोध, राग-द्वेषादि दोषों का क्षय, निर्वैरता और सब प्राणियों का

कल्याण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी निदा आदि से दूषित या अपमानित भी करें, तथापि वह धर्म ही का आचरण करे। ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को भी करना उचित है। सब प्राणियों में पक्षपात-रहित होकर समबुद्धि रखे। उपर्युक्त उत्तम कार्य करने ही के लिये संन्यासाश्रम की विधि है। केवल दंडादि चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं। संन्यासी विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगाके उसे मन से जपे, और तीन प्राणायाम करे। जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं, वैसे ही प्राण के निग्रह से इंद्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिये संन्यासी प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से अंतःकरण के मैल को, प्रत्याहार से संगति के दोष को और ध्यान में अविद्या तथा पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ाकर पक्षपात-रहित आदि ईश्वर के गुणों को धारणकर सब दोषों को नाश कर दे। जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से संयुक्त है, वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता। जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सतनंग, धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञान-हीन होकर संन्यास लेता है, वह संन्यास-पदवी और मोक्ष को न प्राप्त होकर जन्म-मरण रूप संसार को प्राप्त होता है। ऐसे मूर्ख अधर्मी का संन्यास लेना व्यर्थ और धिक्कार के योग्य है।

जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निःस्पृह होता है, तभी यह लोक, यह जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होकर निरंतर सुख को प्राप्त होता है। इस प्रकार धीरे-धीरे सब संगति के दोषों को त्यागकर सब हर्ष-शोकादि द्वंद्वों से विशेषकर निर्मुक्त होकर विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है।

उपर्युक्त नियम मनु ने लिखे हैं। अन्य ग्रंथों में भी इसकी चर्चा है, परंतु इस संन्यासाश्रम का विधान आजकल बहुत बिगड़ गया है। अनधिकारी मुसटंडे भिखारी बहुत हो गए हैं, और सच्चे संन्यासियों की कमी हो गई है। आर्य-समाज ने प्राचीन परिपाटी पर ब्रह्मचारी और संन्यासी बनाने प्रारंभ किए हैं, पर चाहे भी जो हो, यह नियम सार्वजनिक नहीं हो सकता है।

आवश्यकता इन बातों की है कि वृद्धावस्था में—

१—सब इंद्रिय-विषयों से उदासीन रहे।

२—जितात्मा हो।

३—मानसिक विकारों से रहित हो।

४—उसमें भूत-दया हो।

इन कार्यों के लिये भेष बदलने या घर त्यागने की आवश्यकता नहीं है। फिर युग-धर्म का मनुष्यों के जीवन पर खास प्रभाव रहना चाहिए। आज आत्मचित्तन या मुक्ति की कामना करके वन में जाकर मृत्यु प्राप्त करना उतना सुदूर

नहीं। आज देश को सच्चे, गंभीर, विश्वासी बुजुर्गों की बड़ी आवश्यकता है। यदि हम मोतीलाल नेहरू, मालवीय, गांधी आदि पुरुषों को संन्यासी कहे, तो अत्युक्ति नहीं। क्या इन लोगों ने अपना सर्वस्व ही देश को नहीं दे दिया ? ये निर्वैर, निर्विकल्प और परमत्यागी पुरुष राष्ट्र के लिये कैसा बलिदान कर रहे हैं।

ब्रह्मचर्य का यथार्थ अर्थ तो ब्रह्म का चरण करना है, जैसा हम प्रथम अध्याय में बता चुके हैं। उसकी भित्ति त्याग और तप पर है। वही त्याग और तप जो कर रहे हैं, वे ही, सभी अवस्थाओं में, ब्रह्मचर्य-पद के योग्य हैं, उनकी बाहरी वेश-भूषा चाहे जो हो।

इसलिये वृद्धावस्था में जो पुरुष पवित्र, शांत और नीराग जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे इन नियमों का पालन करें, और ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा करें।

१—घर-बार, काम-धंधा, धन-पुत्र, पुत्री-स्त्री, बांधव, सबसे संबंध शिथिल करें।

२—जगत् के दुःखों पर करुण भाव से दृष्टि करें। उसके दुःखों को आत्मा में अनुभव करें, और उन्हें दूर करने में तन-मन से संलग्न हो जायें।

३—स्वार्थों के लिये सभी प्रकार की चेष्टाओं को त्याग दें। सब प्रकार की दुर्भावनाओं, राग-द्वेषों और प्रपंचों को छोड़ दें। शांत, शिष्ट, गंभीर और मननशील रहें।

४—लोक-सेवा और अध्ययन तथा व्यायाम या स्वास्थ्य-संबंधी विषय, केवल इन्हीं बातों का नित्य ध्यान करें।

५—भूमि या तख्त पर शयन करे, शीतकाल में गदेलों की अपेक्षा कंबलों से काम लें। रात्रि के पिछले पहर में नींद त्याग दें। अल्पाहार करें। प्रसन्न रहें। क्रोध और दुःख से दूर रहें। सभी प्रकार के शरीर-कष्टों को सहन करने का अभ्यास करें।

६—मान और अपमान की भावना त्याग दें। यश की इच्छा भी त्याग दें। किसी का मोह न कर सत्य और स्थिर बात कहें, वही करें। मन में कोई विषय गुप्त न रखें। सबसे सरलता से व्यवहार करें।

७—सत्योपदेश से निकट आनेवालों के मनों को शुद्ध बनावे। विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करें।

८—प्राणायाम और योग के साधारण नियमों को विचारें, मनन करें और अभ्यास करें।

इस प्रकार नियमों का पालन करने से मनुष्य वृद्धावस्था में जितेन्द्रिय, सुखी और आनंदित रह सकते हैं।

---

# तेरहवाँ अध्याय

## विशिष्ट ब्रह्मचर्य

जिस प्रकार का ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह, लक्ष्मण यति, हनुमान, शंकर, ब्रह्मवादिनी गार्गी एवं स्वामी दयानंद ने साधन किया है, वह विशिष्ट ब्रह्मचर्य की श्रेणी का है। यह बहुत कुछ संभव है कि ऐसे और भी बहुत-से अप्रसिद्ध पुरुष हो गए हों, जिन्होंने इस प्रकार ब्रह्मचर्य सेवन किया हो। यह विधान अतिशय क्लिष्ट और असाधारण है, फिर भी ऐसा नहीं, जिसे मनुष्य न कर सके, या जो मनुष्य की श्रेणी से दूर हो।

हम यह देखते हैं कि लोग पशुओं को बलात् उनका वीर्य स्वलित न होने देने के लिये, जिससे उनका बल क्षय न हो, उनके वीर्य-कोष नष्ट कर देते हैं। घोड़ों, कुत्तों, बैलों और दूसरे पशुओं के साथ बहुधा यह रीति काम में लाई जाती है, और वे बलिष्ठ, दीर्घजीवी, कष्टसहिष्णु एवं काम के वन जाते हैं।

मुगलों के जमाने में शाही जनानखानों में सेवा करने के लिये जो खोंजे बनाए जाते थे, उनके भी वीर्य-कोष नष्ट कर दिए जाते थे, जिससे वे आजन्म स्त्री-सहवास के अयोग्य हो जाते थे।



परंतु ये उदाहरण इस अध्याय के लिये आदर्श नहीं। इस अध्याय के लिये तो उन्हीं महापुरुषों के चरित्र आदर्श रूप हैं, जिनका जिक्र ऊपर सबसे प्रथम किया जा चुका है।

ये वे पुरुष हैं, जिन्होंने अपनी प्रबल मानसिक शक्ति से हठपूर्वक आजन्म काम-संबंधी विचारों को मस्तिष्क से दूर रक्खा, और बाल-काल से यौवन और यौवन से वृद्धावस्था तक पवित्र जीवन व्यतीत कर दिया।

आज हिंदू-घरों में विधवाओं के अनगिनत जीवन ऐसे ही होंगे। हम जानते हैं, ऐसी विधवाओं ने, जब कभी उनके शील पर आक्रमण हुआ है, जान दे दी है, पर दुरभिसंधि में पतित नहीं हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत-सी स्त्रियाँ मत्त-वचन-कर्म से आजन्म ब्रह्मचारिणी होंगी।

हम यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार का ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये एक विशेष प्रकार के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की आवश्यकता है। ऐसे महापुरुषों की संस्कृत आत्मा और उनकी शरीर-रचना ही खास होती है। यह विलकुल सत्य है कि जिस देश में ऐसे पुरुष पैदा होते हैं, वह देश धन्य है।

योरप में स्त्री-पुरुष बहुधा अविवाहित रहना पसंद करते हैं, पर सच पूछिए, तो इस अविवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य की पुष्ट नहीं, प्रत्युत स्वच्छंद व्यभिचार की पुष्ट है।

प्राचीन काल में योरप में कुछ मठों की सृष्टि हुई थी, जिनमें

स्त्री-पुरुष हठात् ब्रह्मचर्य-व्रत में रक्खे जाते थे । यहाँ तक यह नियम कठोरता से काम में लाया जाता था कि यदि किसी स्त्री-मठ में पुरुष पाया जाता था, तो उसकी सज़ा मौत थी ।

बुद्ध भगवान् स्वयं एक महा साहसी चरित्रवान् पुरुष थे, जिन्होंने भरी जवानी में उष्कट त्याग किया, परंतु बौद्ध-धर्म में स्त्री-पुरुषों को बलात् जिस प्रकार ब्रह्मचर्य में दीक्षित किया गया, वह नियम सफल न हुआ ।

वास्तव में यह सर्वसाधारण का नियम नहीं । यदि कोई युवक या युवती इस व्रत का पालन किया चाहे, तो उसे कठोर नियमों का पालन करना होगा । हम उन नियमों का यहाँ उल्लेख करते हैं—

१—प्रथम अध्याय में जो ब्रह्मचारी के लिये पालन करने के नियम लिखे हैं, उनका आजन्म पालन करना चाहिए । परिस्थिति के कारण बाहरी वेश-भूषा में कुछ परिवर्तन किया जा सकता है, परंतु आहार-विहार का भीतरी नियम उसी प्रकार रहना चाहिए ।

२—सायं-प्रातः प्रतिदिन विला नागा २-२ घंटे व्यायाम करना चाहिए । व्यायाम से शरीर को भली भाँति थका देना चाहिए । ब्रह्मचारी के लिये क्या-क्या व्यायाम करने होंगे, यह हम अगले अध्याय में लिखेंगे ।

३—ऐसे पुरुष को किसी लौकिक कार्य या व्यवसाय न करना चाहिए । परमार्थ और समाज-सेवा में ही संलग्न रहना चाहिए ।

बिना किसी भाँति के जाति-भेद के प्राणी-मात्र की सेवा करना चाहिए। लोक-हित के लिये अपने देश, समाज, कुटुंब और शरीर तक को त्याग देने के लिये तैयार रहना चाहिए। प्राण तथा शरीर दोनों की ममता त्यागकर सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। लोक-सेवा के लिये प्राण और शरीर त्यागने को सदैव प्रसन्नता से तैयार रहना चाहिए। सारे संसार को—प्राणी-मात्र को—अपना कुटुंब समझना और उस पर अकपट प्रेम रखना चाहिए। मैं लोगों का उपकार करता हूँ, लोगों पर दया करके उनका दुख मिटाता हूँ, यह भाव भी त्याग देना चाहिए, मैं एक माधारण व्यक्ति हूँ, यही समझना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे आत्म विकास प्राप्त करना चाहिए।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ;

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः ।

( गीता )

अर्थात् जो सब भूतों ( प्राणियों ) में अपने को और अपने में सब भूतों को समा समझता है, वह योगी समदर्शी बन जाता है। ऐसे महापुरुषों को सेवक, सेवा और सेव्य एक ही समझने चाहिए। उसे जानना चाहिए कि मैं अपनी ही सेवा कर रहा हूँ, किसी गैर की नहीं।

४—ऐसे पुरुष-स्त्रियों को व्यक्तिगत रूप से जो आत्मीय जनों के प्रति विशेष अनुरदायित्व हैं, उसे सीमित करना चाहिए। जैसे—

( १ ) माता-पिता के प्रति—माता-पिता का संबंध केवल स्थूल शरीर से है, अतः मातृ-पितृ-भक्ति में इतनी आसक्ति नहीं होनी चाहिए, जिससे आत्मोन्नति में बाधा पहुँचे ।

( २ ) गुरुजन के प्रति—ज्ञान-दाता तथा श्रेष्ठ आचारीगण गुरुजन होते हैं । सच्ची गुरु-भक्ति ज्ञान का सदुपयोग ही है । उनका अप्रिय कोई कार्य नहीं करना ।

( ३ ) पति-पत्नी—यह विशिष्ट परिस्थिति है । यदि ऐसे स्त्री या पुरुष पति या पत्नी का पूर्व ग्रहण कर चुके हों, तो उनमें शरीर-संबंध न होकर आत्मा का संबंध हो । दोनों दोनों की कल्याण-कामना करें, और दोनों दोनों के प्रिय आचरण करें ।

( ४ ) स्वामी के प्रति—उसके प्रति आदर-भाव रखना, सदैव उसकी शुभ-चितना करना और उसे सदैव शुभ परामर्श देना ।

( ५ ) संतान और अधीनवर्ग—उनके दुःख-सुखों को समझना और सदैव उन्हें सन्मार्ग पर चलाना ।

( ६ ) मित्रों के प्रति—उन्हें सदैव ही कर्तव्य का स्मरण कराते रहना और उन्हें प्रमादो न बनने देना ।

( ७ ) अन्य परिचितों के प्रति—पवित्र करुणा-भाव रखना । सबको सब भाँति क्षमा करना ।

( ८ ) शत्रुओं के प्रति—स्नेह और सहनशीलता से रहना ।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ;

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यौ मित्रारिपक्षयोः ;

सर्वारम्भःपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।

( गीता )

सुख-दुःख में समान रहे, मिट्टी और सोने को समान समझे ।  
प्रिय और अप्रिय में भेद न जाने, निदा और स्तुति में समान  
हो । मानापमान और मित्र-शत्रु में भेद न जाने, जो सब  
स्वार्थों को त्याग दे, वह धीर पुरुष गुणातीत हो सकता है ।

---

# चौदहवाँ अध्याय

## ऊर्ध्वरेत-प्रक्रिया

ऊर्ध्वरेता का अर्थ है वीर्य को ऊपर को आकर्षण करके मस्तिष्क में स्थिर कर लेना । यह क्रिया अतिशय दुर्धर्ष है । और योग-शास्त्र के अभ्यास बिना इसका करना लगभग असंभव-सा है । पर फिर भी इसके संबंध में हम कुछ आवश्यक बातें लिखेंगे ।

स्मरण रखने की बात है कि वीर्य शरीर-भर में इस प्रकार रमा हुआ है, जैसे तिल में तेल । यह वीर्य विचारों की उष्णता पाकर अपान वायु के अधीन होकर अधोगति को प्राप्त होता है, और तब इसका स्खलन होता है । यह स्वाभाविक बात है कि वीर्य-संबंधी चिंतना शरीर में उत्पन्न होते ही वीर्य का अधःस्राव होने लगता है । यदि ब्रह्मचारी तनिक भी असावधान हो, तो खान-पान के ही दाष से वीर्य अनिच्छा-पूर्वक स्वप्न में या मूत्र के संसर्ग से बाहर निकल जाता है ।

परंतु जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होता है, उसका वीर्य अपान वायु की संचालिनी शक्ति से विमुक्त होकर परिपक्व होने पर प्रथम ओज होता और फिर मस्तिष्क में रम जाता है । ऐसे पुरुष का वीर्य स्त्री-प्रसंग में भी स्खलित नहीं होता । प्राण वायु

के नियमन से यह शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे पुरुष वीर्य-नली द्वारा मूर्त्रेन्द्रिय मार्ग से स्त्री का ओज अपने शरीर में आकर्षित कर लेते हैं। और उन्हें वीर्य-पात की अपेक्षा अति-शय गंभीर आनन्द प्राप्त होता है।

योगी लोग प्रथम मूर्त्रेन्द्रिय द्वारा वायु खींचकर फिर जल, दूध और पारा खींचकर मूर्त्रेन्द्रिय से प्रश्वास लेने का अभ्यास करते हैं। वे प्राणायाम की विधि से पाँचो वायुओं को ठीक-ठीक नियमित कर सकते हैं। ऊर्ध्वरेता का शरीर वज्र की भाँति हो जाता है, और शीत-उष्णता और रोग-विष उस पर प्रभाव नहीं कर सकते। मृत्यु और जीवन भी उसकी इच्छा के अधीन होते हैं।

ऊर्ध्वरेतन क्रिया में सर्वप्रथम क्रिया प्राणायाम की है। इस क्रिया की साधारण बातें हम यहाँ पर लिखते हैं—

प्राणायाम-विधान—जैसे अग्नि में धातु डाल देने से वह निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम से सब इंद्रियो के दोष भक्ष्य हो जाते हैं।

प्राणायाम का स्थूल प्रभाव यह होना चाहिए कि मस्तिष्क के साथ हृदय का एकीकरण हो जाय। प्राण वायु वास्तव में हृदय को प्रीणन करती है, और वह हृदय ही में रहती है। हृदय ही प्राण का स्थान है, उसी प्राण वायु को अभ्यास से मस्तिष्क में व्याप्त कर देना, यही प्राणायाम की सीमा है।

पस्विष्क में सहस्रमार-चक्र है, और इसके नीचे पृष्ठ-वंश के

साथ कई चक्र हैं। प्राणायाम द्वारा नीचे से एक-एक चक्र में प्राण भरने की क्रिया साध्य होती है। और सबके अंत में इस मस्तिष्क के सहस्मार-चक्र में प्राण भेजा जाता है। इस अवस्था से पूर्व पृष्ठ-वंश की नाड़ियों में प्राण का उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मस्तिष्क के सहस्मार-चक्र में प्राण पहुँचता है, और ब्रह्मरंध्र तक पहुँचकर उसी में स्थित हो जाता है। यह प्राण की सर्वोत्तम गति है। इस स्थान में ब्रह्म के साथ प्राण का संसर्ग होने से सर्वश्रेष्ठ अवस्था प्राप्त हो जाती है।

मस्तिष्क में दिव्य विचारों की जाँ धारा बहान होती रहती है—वे प्राण के वहाँ प्राप्त होने पर ही उसका भोजन करते हैं, और पुष्ट होते हैं। हृदय रक्त का कुंड है, वह मारे शरीर को स्वच्छ और ताजा रक्त देता है। वही रक्त अमृत है, उसी से शरीर आप्यायित होता और इंद्रियों की परितृप्ति होती है।

जब प्राणायाम से चित्त की एकाग्रता होती है, तब कई अज्ञात शक्तियों का विकास होता है, उन्नी अवस्था में आंतरिक उपकरणों का विकास भी होता है। इसी रीति से हृदय आदि अंतरंगों का पूर्ण ज्ञान होने के पश्चात् वहाँ अपने आत्मा की शक्ति कैसी अद्भुत रीति से कार्य कर रही है, इसका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अपने आत्मा की शक्ति विदित होते ही उक्त फल प्राप्त होता है।

जब इस प्रकार प्राणायाम सफल हो जाता है, तब पुरुष



अकाल मृत्यु से नहीं मरता, पूर्ण आयुष्य की समाप्ति के पश्चात् स्वकीय इच्छा से ही मरता है। आयुष्य की समाप्ति तक उसके पूर्ण अंग, अवयव और इंद्रिय बलवान् तथा कार्य-क्षम बने रहते हैं। प्राणों की विशेषता इस प्रकार है—

१—आंतरिक प्राण का बाह्य वायु के साथ नित्य संबंध है।

२—जितना प्राण होता है, उतनी ही आयु होती है, इसलिये प्राण-शक्ति की वृद्धि करने से आयु की वृद्धि होती है।

३—प्राण-रक्षण-नियमों के अनुकूल आचरण करने से न केवल प्राणों का बल बढ़ता है, प्रत्युत चक्षु आदि सभी इंद्रियो, अवयवों और अंगों की शक्ति बढ़ती और उत्तम आरोग्य प्राप्त होता है।

४—प्राणायाम के साथ मन में शुभ विचारों की धारणा धरने से बड़ा लाभ होता है।

५—सूर्य-प्रकाश का सेवन तथा भोजन में घी का सेवन करने से प्राणायाम शीघ्र सिद्ध होता है।

६—प्राण का वीर्य के साथ संबंध है। वीर्य-रक्षण से प्राण की शक्ति वृद्धि होती है, और प्राणायाम से वीर्य की स्थिरता होती है।

७—प्राण-संवर्धन के नियमों के विरुद्ध व्यवहार करने से शक्ति क्षीण होकर अकाल मृत्यु होती है।

८—प्राण जीवन-तत्त्व का अधिष्ठाता है।

प्राणायाम तीन प्रकार का है—१. पूरक, २. कुम्भक और ३. रेचक ।

**पूरक**—नाक के दाहने छिद्र को दाहने हाथ के अँगूठे से दबाकर बाएँ छिद्र से धीरे-धीरे पेट में वायु भरना ।

**कुम्भक**—फिर बाएँ छिद्र को भी बंद करके पेट की भरी वायु का निरोध करना ।

**रेचक**—नाक के बाएँ छिद्र से बलपूर्वक वायु को फेंक देना । इस प्रकार छ बार प्रारम्भ में करना । तीन सवेरे तीन शाम को । इस काम के लिये दुर्गन्ध-रहित शुद्ध स्थान होना चाहिए । सिद्धासन से समथल भूमि में बैठ जाना चाहिए । और जब-जब प्राण वायु को खींचे, तब-तब गुदा-द्वार और उपस्थ भी खींचना चाहिए ।

यदि प्राणायाम ठीक-ठीक सिद्ध हो जाय, तो फिर मूत्र-मार्ग से वायु, जल, दूध और पारद को खींचने का अभ्यास करना चाहिए ।

यह अभ्यास करने के समय लघु आहार करना और शांत तथा मन-वचन-कर्म से जितेन्द्रिय रहना चाहिए । यदि चित्त में चंचलता हो, और चित्त स्थिर न हो, तो यह क्रिया करनी चाहिए—

पद्मासन से सीधा बैठना, अचल रहना, और दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर ठहराना ।

अभ्यास करने से ज्यों-ज्यों यह क्रिया सिद्ध होगी, चित्त की चंचलता नष्ट होगी ।

ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचर्य-साधकों को इन नियमों का भी पालन करना चाहिए—

१—स्वल्पाहार करें। कभी ठूँस-ठूँसकर न खायें। सुपाच्य, ताजा और परिमित भोजन खायें। दूध, भात, फल आदि।

गीता में लिखा है—

आयुः सत्त्वत्तारोग्यं सुखप्रीतिविवर्द्धनाः ;

रम्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।

रम्य, रसगन्ध, नियमित, हृद्य और सात्त्विक आहार आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला है।

फलाहार अति सात्त्विक है। इनमें फुजला बहुत कम और पोषक तत्त्व विशेष होता है।

दूध—स्वासकर धारोष्ण दूध अति हितकारी है।

२—एकांत वास या सत्संग करें, जिससे चित्त की वंचलता नष्ट हो और ज्ञान का उदय हो।

३—मनन करें—पूर्व अध्ययन का तथा नवीन अध्ययन का सिलसिला बराबर जारी रखें।

## पंद्रहवाँ अध्याय

अनिच्छा-पूर्वक ब्रह्मचर्य भंग करनेवाले रोग

और उनके उपचार

हम यह बता आए हैं कि वीर्य अधोगमनशील है । जब वह स्वभावतः परिपक्व हो जाता है, तब तनिक से भी विचारों से उत्तेजित होकर नीचे वहने लगता है । वह च्युत वीर्य यदि नैसर्गिक कारण नहीं पाता, तो स्वप्न में या मूत्र के साथ गिर जाता है । इस प्रकार अनिच्छा से ब्रह्मचर्य भंग करनेवाले रोग ये हैं—

१—वद्धकोष्ठ या कब्जित ।

२—निद्रा-नाश ।

३—स्वप्न-दोष ।

४—मूत्रप्रमेह ।

वद्धकोष्ठ—यह उन्ही लोगों को होता है, जो बचपन से अनियमित खान-पान करते हैं । जिनके खाने और शौच जाने का कोई ठिकाना नहीं । ऐसे लोगों के मूत्र में प्रथम एल्ब्यूमेन आता है, और तब वीर्य आगे-पीछे जोर के साथ आने लगता है ।

इसके लिये ये उपचार करने चाहिए —

१—भोजन के साथ दूध का सेवन करो ।

२—पत्तों की साग-सब्जी ज्यादा खाओ, रोटी मोटी खाओ ।

३—मुनक्का या अंजीर खाओ ।

४—सप्ताह में एक बार त्रिफला की ४ माशे गर्म पानी से रात्रि में फंकी लो ।

५—भोजन की मात्रा और समय नियत कर लो ।

६—भारी और बासी भोजन न करो ।

निद्रा-नाश—यह मानसिक रोग है । यदि दुश्चिताएँ मन में वास कर जाती हैं, तो निद्रा-नाश हो जाता है । क्लृब्ध और मूत्राशय की गड़बड़ों से भी निद्रा-नाश होता है । निद्रा-नाश से बद्ध-कोष्ठ होकर मूत्र के साथ वीर्य-स्राव होने लगता है, इसका उपाय यह करो—

१—दिन में मत सोओ ।

२—सोने से पूर्व गर्म पानी में १० मिनट पैर भिगो लो । फिर सुखा लो ।

३—हल्का भोजन करो । सोने से ३ घंटे पूर्व ।

४—दुश्चिताओं को नाश करो, और कोई उत्तम ग्रंथ पढ़ो ।

५—पूर्व-पश्चिम सोओ ।

६—सोने से पूर्व एक प्याला गर्म पानी ज़रा-सा नीबू निचोड़कर पिओ ।

७—यदि लाभ न हो, तो यह दवा बनाकर खाओ—

मुरब्बा आँवला १ छ०, किशमिश १ छ० बादामगिरी १ छ०

तीनों को पीसकर चटनी बना लो । इसमें १ तोला वंशलोचन तथा ६ माशे छोटी इलायची डाल दो । मात्रा २ तोला दूध के साथ ।

### स्वप्न-दोष

१—यदि स्वप्न-दोष निद्रा-नाश या क्लब्जी के कारण है, तो उपर्युक्त कारण दूर होने पर स्वयं मिट जायगा ।

२—यदि वह बुरे विचारों के कारण है, तो उन्हें दूर करो ।

३—यदि मूत्राशय की उष्णता से है, तो यह दवा खाओ—  
ब्राह्मी-चूर्ण १ तोला, शीतल चीनी १ तोला, फूपूर ३ माशे ।  
कपड़छान कर लो । मात्रा ४ रत्ती । सोने के समय ताजा पानी से लो, जब तक स्वप्न-दोष दूर न हो जाय । पेशाब को कदापि मत रोको ।

### मूत्र-प्रमेह

१—त्रिफला १॥ तोला, हल्दी ६ माशे । रात्रि को भिगो दो, सुबह मल-च्छान शहद मिलाकर खाओ ।

२—चंद्रप्रभा गुटिका सेवन करो ।

उत्तम हो कि किसी योग्य चिकित्सक से सम्मति लो ।

# सोलहवाँ अध्याय

## ब्रह्मचर्य-संबंधी व्यायाम

हम कुछ व्यायामों का जिक्र पीछे कर आए हैं। वे व्यायाम प्रत्येक ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करनेवाले स्त्री-पुरुष को लाभदायक हैं। इसके सिवा सिर्फ पुरुषों के लिये हम कुछ व्यायाम लिखते हैं—

१. कुश्ती—यह क्रिया प्रातःकाल करनी चाहिए। इससे समस्त शरीर को व्यायाम मिलता है, और शरीर का प्रत्येक अवयव थकता है, पसीना भी यथेष्ट निकलता है। मांस-पेशियाँ विचलित होती हैं, और रुधिराभिसरण ठीक होता है।

२. दंड-बैठक—बैठक करने से पूर्व लँगोट कस लेना उत्तम है। दंड का अभ्यास करना जरा सावधानी से होना चाहिए। यदि दंड करने से मस्तिष्क में रक्त जमा हो जाय, और उससे निद्रा-नाश होने का भय हो, तो वह श्याग देना चाहिए।

३. दौड़—सबसे उत्तम व्यायाम है। जितना अधिक दौड़ा जाय, उत्तम है। दौड़ने का समय ग्रीष्म-ऋतु में प्रातःकाल तथा शीत-ऋतु में अपराह्न काल है।

४. तैरना या नौका चलाना—यह भी उत्तम व्यायाम है। ये दोनों ही व्यायाम उत्तम रीति से प्राणों को बशीभूत करते हैं।

प्रत्येक ब्रह्मचारी को रात्रि को सोने से पूर्व यह क्रिया करनी चाहिए—

भूमि पर चटाई या मृग-चर्म बिछाकर बैठो । पेट भरा न हो । भोजन किए दो-तीन घंटे व्यतीत हो चुके हों । मूत्रादि त्याग कर बैठना उचित है । बाएँ पैर की एड़ी गुदा और इंद्रिय के बीच में और दाएँ पैर की एड़ी बाएँ पैर पर इंद्रिय के ऊपर रखनी चाहिए । सिर को सीधे, ठोड़ी को झुकाकर तथा आँखों को सामने करके बिना कमर झुकाए बैठ जाओ । स्थिर होकर बैठो । आत्मचित्तन करो । धीरे-धीरे प्राणायाम करो । यह क्रिया आध घंटे करो । यदि चित्त में काम-विकार हो, तो तनिक अधिक देर नक करो ।

५. शीर्षासन—यह आसन ब्रह्मचर्य-पालन के लिये सहायक हो सकता है, पर इसके अभ्यास में दो बातों का ध्यान रखना चाहिए । एक तो यह कि जब तक शीर्षासन किया जाय, खान-पान आदि में असावेधानी न होना चाहिए । दूसरे, निर्बल और रोगी व्यक्ति को इसका अभ्यास न करना चाहिए । यह आसन १५ मिनट से अधिक काल तक न करना चाहिए ।

---



# सत्रहवां अध्याय

## ब्रह्मचर्य-संबंधी सदुपदेश

१—प्रतिज्ञा करो कि मैं अवश्य ब्रह्मचर्य-साधन करूँगा । मैं इसमें सफल होऊँगा । यह मेरे लिये कठिन नहीं है । मैं कदापि इंद्रियों की अधीनता नहीं स्वीकार करूँगा । मैं अपने मन और शरीर पर अधिकार रखूँगा ।

२—अभ्यास करो, और विफल होने पर कदापि लज्जित मत हो ।

३—जीवन, धन, यौवन क्षण-भर के लिये हैं, इस पर गर्व करो, इनका दुरुपयोग न करो ।

४—भ्रष्टा रक्खो, तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी ।

५—विश्वास करो कि तुम आदर्श ब्रह्मचारी बनकर रहोगे ।

६—संसार की स्त्रियाँ तुम्हारे लिये बहनें, पुत्रियाँ और माताएँ हैं ।

७—सर्व-शक्तिमान् ईश्वर सदैव ही दुर्गुणों से तुम्हें रक्षित रखे ।

८—वीर्यवान् ही विद्वान् हो सकता है ।

९—ब्रह्मचर्य जीवन है, और वीर्य-नाश मौत ।

१०—मैं वीर्य का अनमोल मोती नष्ट न करूँगा । इनके सिवा  
इन दश नियमों का भी पालन करो—

१—प्रातःकाल भ्रमण ।

२—गहरे श्वास लेना ।

३—नियमित आहार-विहार ।

४—शरीर-शुद्धि ।

५—प्रसन्न मन ।

६—निष्पाप वृत्ति ।

७—साधारण परिच्छेद ।

८—सादा जीवन ।

९—यथेष्ट परिश्रम ।

१०—सस्संग ।



# अठारहवाँ अध्याय

## सूक्ति-संचय

“यह संसार मातृमय है । फिर कुभावना के लिये स्थान कहाँ ? तब ब्रह्मचर्य-पालन में कठिनाई क्या है ?”

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

“अविवाहित जीवन से परमात्मा प्यार करता है । संयम और पवित्रता से रहना स्वर्गीय आदेश है ।”

—मसीह

“मनुष्य को अपना जीवन निष्पाप तथा उच्च सदाचार-युक्त बनाना चाहिए ।”

—सुक्ररात

“वही देश सौभाग्यवान् होता है, जिसमें ब्रह्मचर्य, वेदोक्त धर्म और विद्या का प्रचार होता है ।”

—दयानंद सरस्वती

“ब्रह्मचर्य की अखंडता से सहज ही परमात्मदर्शन होता है ।”

—शंकराचार्य

“हमें ऐसे ब्रह्मचारी मनुष्य चाहिए, जिनके शरीर की नसें लोहे की भाँति और स्नायु ईस्पात की भाँति दृढ़ हों । उनकी देह में

ऐसा मन हो, जिसका संगठन वज्र से हुआ हो। हमें चाहिए पराक्रम, मनुष्यत्व, ज्ञान वीर्य और ब्रह्म तेज।”

—विष्णुकानंद

“जैसे दीपक में तेल पत्ती द्वारा ऊपर को चढ़कर प्रकाश के रूप में घटल जाता है, वैसे ही यह शक्ति (वीर्य), जिसका नीचे की ओर बहाव है, यदि ऊपर जाने लगे, तो आत्मतेज का प्रकाश प्रकट हो जायगा।”

—रामतीर्थ

“वीर्य ही से आत्मा को अमरत्व प्राप्त होता है।”

—निश्चयानंद

“विद्यार्थियों और युवकों को ब्रह्मचर्य की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि बिना धन और बुद्धि के अधिकारों की रक्षा नहीं होती।”

—तिलक

“ब्रह्मचर्य और योग ही सुख का मार्ग है।”

—अरविंद

“बाल ब्रह्मचारी ऋषिदयानंद का जीवन-दृष्टांत हमारे सामने है, जो आदर्श व्यक्तित्व का द्योतक है।”

—रवींद्र

“मैं चाहता हूँ, हनुमान-जैसों की मूर्तियाँ स्थान-स्थान पर खड़ी की जायँ, और वहाँ लँगोटे के सघे ही लोग जायँ।”

—मालवीय

“संसार वीर्यवान् के लिये है ।”

—सत्यदेव

“शास्त्रों के अध्ययन से मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय ब्रह्मचर्य सूझ पड़ा है ।”

—राममूर्ति

“मनुष्य-जाति में सुख-शांति स्थापित करने के लिये पुरुष-स्त्री दोनों को संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने का उद्योग करना श्रेयस्कर है ।”

—टॉल्स्टॉय

“जननेंद्रिय, पाकस्थली और मस्तिष्क तीनों में घनिष्ठ संबंध है । एक के रोगी होने पर दूसरे भी बचते नहीं ।”

—डॉ० जी० एम्० वियर्ड

“वीर्य हो मनुष्य-शरीर का जीवन है ।”

—डॉ० पी० टी० हार्न

“वीर्य तुम्हारी हड्डियों का सत, मस्तिष्क का भोजन, जोड़ों का तेल, श्वास का माधुर्य है । यदि तुम मनुष्य हो, तो उसका एक बिंदु भी नष्ट न करो, जब तक कि पूर्ण ३० वर्ष के न हो जाओ । और तब सिर्फ गर्भाधान करो ।”

—डॉ० मेलबील, कीथ एम्० डी०

# गंगा-पुस्तकमाला की स्वास्थ्य और चिकित्सा-संबंधी कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

संचित स्वास्थ्य-रक्षा

लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य ने इसमें स्वास्थ्य-रक्षा के मूल-तत्वों की बड़ी ही सरल भाषा में विवेचना की है। यदि आप चाहते हैं कि आप और आपकी संतान सदैव नीरोग रहे, तो इस पुस्तक को मँगाकर अपने घर रखिए, और इसके अनुसार आचरण करिए। फिर देखिए, आपका स्वास्थ्य कितना सुंदर रहता है। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।)

स्वास्थ्य की कुंजी

हिंदोस्तान बीमारों का देश बनता जा रहा है। शरीर तो जैसी है, सो है ही, बीमारी का दौरा इस देश में शज़ब का है। जिसे देखिए, बीमार। नौजवानों की हालत तो और भी गई-बीती है। बिना स्वास्थ्य-सुधार के भविष्य में—स्वतंत्र भारत के लिये—कोई आशा नहीं रह जाती। स्वास्थ्य-सुधार की इसी कठिन समस्या को सुलझाने के लिये यह 'कुंजी' तैयार कराई गई है। अवश्य पढ़िए। मूल्य १।), सजिल्द १।।)

तात्कालिक चिकित्सा

लेखक, श्रीलालबहादुरलाल। मनुष्य की असावधानी तथा नियमों

की अनभिज्ञता के कारण यह मनुष्य-शरीर दूटा-फूटा एवं अस्वस्थ रहता और विनाश को प्राप्त हुआ करता है। फलतः इसे प्रतिक्षण किसी सुयोग्य डॉक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता हुआ करती है। किंतु प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय उसकी सहायता प्राप्त करना कठिन होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी शरीर-रचना तथा उसके स्वास्थ्य-नियमों का यथोचित ज्ञान रखे, ताकि समय-कुसमय, डॉक्टरों अथवा अनुभवी वैद्यों की अनुपस्थिति में भी, वह अपनी, अपने कुटुंबियों की, मित्र-मंडली और अन्य प्राणियों की यथार्थ तारकालिक चिकित्सा कर सके। यह पुस्तक इसीलिये लिखी गई है। इसकी भाषा सरल है, और चित्रों से इसका आशय समझने में और भी सुगमता हो गई है। इसके लेखक एक अनुभवी बालचर-शिक्षक ( Scout Master ) और सहृदय देश-भक्त है। बालचरों के लिये तो यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। साथ ही प्रत्येक छोटे-बड़े गृहस्थ को भी इसकी एक-एक प्रति अपने यहाँ रखकर इससे लाभ उठाना चाहिए। रयान-स्थान पर लगभग पचास-साठ चित्र भी दे दिए गए हैं। इस कारण पुस्तक का विषय समझने में और भी सरलता हो गई है। इतने चित्रों के रहते हुए भी इस उपयोगी, अत्यावश्यक, महत्व-पूर्ण पुस्तक का मूल्य १/-, सजित १॥)

### संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

संसार में स्वास्थ्य और शरीर का रक्षा से बढ़कर और कुछ भी महत्व-पूर्ण नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षा ही जीवन का मूल-धन है। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से लौकिक सुख दुर्लभ हो जाते हैं। शारीरिक सुख तो स्वास्थ्य-रक्षा ही पर पूर्ण रूप से निर्भर है। जिसका स्वास्थ्य ठीक नहीं, वह सब तरह से संपन्न होकर भी दरिद्र और दुखी है। किंतु शरीर की भीतरी बातें जाने बिना स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती।

प्रत्येक अवयव की अंदरूनी हालत जानने से स्वास्थ्य-रक्षा में बड़ी सुविधा और सुगमता होती है। इस पुस्तक में मानव-शरीर के प्रत्येक अंग की घनावट और उसकी आंतरिक अवस्था का सूक्ष्म विवेचन बड़ी अनुभवशीलता और सरलता से किया गया है। संसार में सुख की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक शास्त्र से परिचित होना चाहिए। यह पुस्तक शारीरिक शास्त्र का सार-गर्भ निचोड़ और सर्वोपयोगी है। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।)

### स्त्रियों के व्यायाम

बिना स्त्रियों के स्वस्थ हुए हम बीमारों की जाति का उद्धार असंभव है। सदियों से पर्दे के बंधन में रखकर हमने अपनी जिन गृह-देवियों को 'चित्र लिये कपि देखि डरातीं' का प्रयत्न उदाहरण बना डाला है। उन्हीं कोमलांगी अमलाओं को सबला और स्वस्थ बनाने के लिये, उन्हें दुष्टों का सायना करने योग्य बनाने के लिये, व्यायाम अत्यंत आवश्यक है। सुंदर, आकर्षक चित्रों द्वारा लगभग ४० व्यायामों का यह सुंदर विवरण अपने ढंग का अनोखा ही है। अवश्य देखिए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

### प्राणायाम

अनुवादक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०। यह पुस्तक स्वामी रामचारक-लिखित 'साइंस ऑफ़ ब्रेथ' का हिंदी-रूपांतर है। प्राणायाम-जैसी कठिन क्रिया बड़ी सरल भाषा में समझाई गई है। साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी इसे एक बार पढ़कर प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। योगी तथा गृहस्थ सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य केवल ॥=), सजिल्द १।=)

### किशोरावस्था

( द्वितीयावृत्ति )

लेखक, स्व० गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए०। पुस्तक अपने



ढंग की एक ही है। प्रत्येक पिता को अवश्य मँगाकर पढ़नी और अपने युवक पुत्रों के हाथ में रखनी चाहिए। जिन बुराईयों में पढ़कर नवयुवक अपने यौवन-काल का सर्वनाश करते हैं, उन्हीं का इसमें बड़ी मार्मिक भाषा में वर्णन किया गया है। यद्यपन से लज्जानी, यौवन-काल का शारीरिक परिवर्तन, शिष्टा और संयम, स्वप्न-दोष और उसका निवारण, युवकों का स्वास्थ्य, युवकों का धार्मिक विशार, बड़ों का कर्तव्य आदि विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से लिखा गया है। साथ ही एक 'मदन-दहन'-नामक कहानी भी दी गई है। यह बड़ी ही रोचक और शिष्टाप्रद है। विषय को सुगम ऋग्मे के लिये स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥२॥, सजिल्द १२॥

### हठयोग

( द्वितीयावृत्ति )

अनुवादक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंहजी बी० ए०। बाबा राम-चारकदास की लिखी हुई, इसी नाम की पुस्तक का हिंदी-अनुवाद। इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं, जिन्हें आप खाते-पीते, उठते-बैठते, चल्ते-फिरते हर समय कर सकते हैं। थोड़े ही अभ्यास से आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता उस मात्रा तक पहुँच जायगी, जिसका आपको स्वप्न में भी खयाल न होगा। पुस्तक को पढ़कर अभ्यास शुरू कीजिए, बड़ा लाभ होगा, कोई बीमारी कभी न उभरेगी, बल्कि हमेशा के लिये दूर हो जायगी। मूल्य १॥२॥, सजिल्द १॥१॥

